R.N.I. No. 2321/57

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 04/2016-18

अगस्त 2017

अंक 7

तपोभूमि

मासिक

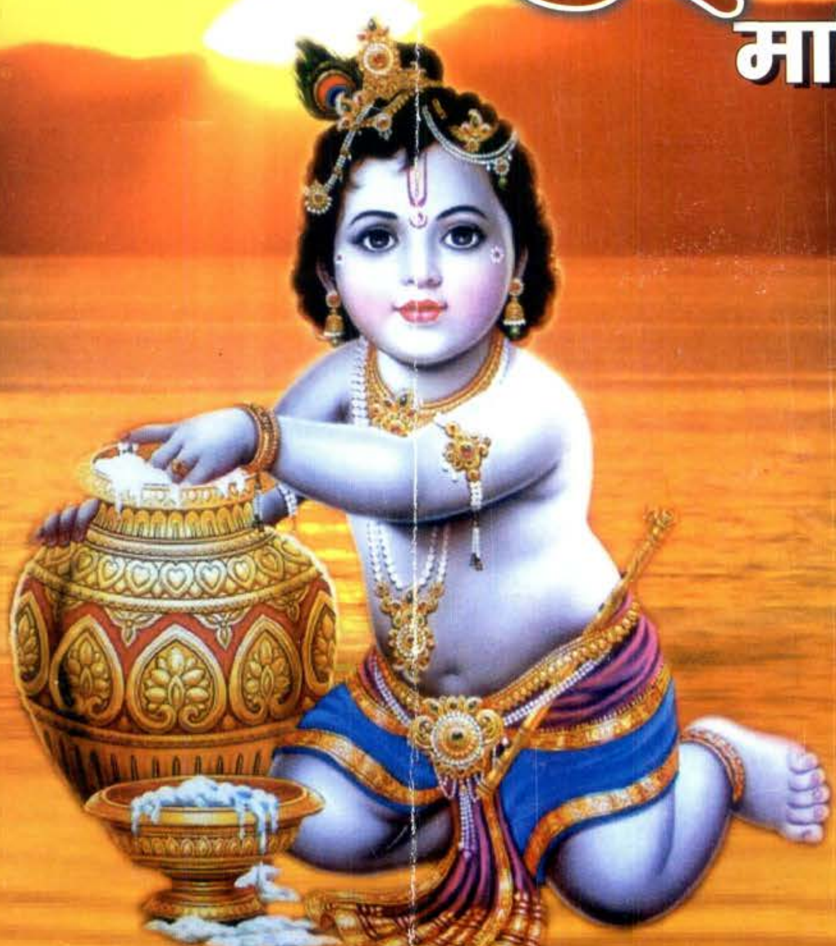

जुल्मों की कारा में जन्मे, मुक्ति लिए जन-जन की।
दैत्यों का संहार बन गयीं, क्रीड़ायें बचपन की।
गोकुल में किलके कि ढह गया, क्रूर कंस का शासन।
नहीं फूल-फल सकी कामना, किसी पूतना मन की।

※ निःशुल्क शिक्षा ※

संसार में मनुष्य जीवन के लिए जल और वायु ये दो ऐसी वस्तुएँ हैं जिनके बिना मनुष्य एक दिन भी जीवित नहीं रह सकता। परमेश्वर ने इन पदार्थों को इतनी अधिकता में उत्पन्न किया है कि वे प्रत्येक स्थान पर बिना किसी मूल्य के प्राप्त होते हैं। निर्धन से निर्धन के घर में भी वायु बहता है क्योंकि बिना उसके जीवन रह नहीं सकता। जल की नदियां बह रही हैं जल प्राप्ति के लिए कुएँ बन सकते हैं। यद्यपि कुओं से जल प्राप्ति में कुछ परिश्रम करना पड़ता है परन्तु वह भी बिना मूल्य प्राप्त होता है। क्या वह देश हतभाग्य नहीं कि जिस देश में जल और वायु धनवानों की सम्पत्ति हो जाए और वे रुपये से बिकने लगे उस दशा में कोई भी निर्धन व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता। तब क्या उस देश की जीवित देशों में गणना होगी जिसका एक भाग अर्थात् उसके निर्धन निवासी जीवन से रहित हो जाएँ क्या कोई बुद्धिमान स्वीकार करेगा कि जल और वायु बेची जाया करे। जिससे उसके निर्धन भाई उनसे रहित होकर अपना जीवन खो बैठें? जो सम्बन्ध शारीरिक जीवन का वायु और जल के साथ है वही सम्बन्ध आत्मिक जीवन का शिक्षा के साथ है, क्योंकि बिना शिक्षा के आत्मिक जीवन स्थिर ही नहीं रह सकता। जहाँ आत्मिक जीवन न हो वहाँ मन और इन्द्रियों पर अधिकार किस प्रकार हो सकता है। जहाँ मन और इन्द्रियां स्वतन्त्रता से कम करने लगें वहाँ चारित्रिक जीवन किस प्रकार हो सकता है क्योंकि चारित्रिक जीवन का अधिकार विवेक है। अर्थात् कुछ कर्म जो करने योग्य हैं जो मनुष्य के शारीरिक तथा सामाजिक और आत्मिक जीवन के लिए लाभदायक है उन्हें करना ही विवेक का कार्य है जो मनुष्य विवेक रखता है वह स्वतन्त्र नहीं हो सकता क्योंकि स्वतन्त्र वह कहला सकता है जो करने न करने और उल्टा करने की शक्ति रखता है। परन्तु बुद्धि बुरे कर्मों को करने से रोकती हो तो बुद्धिमान उसके विरुद्ध नहीं कर सकता अर्थात् जिन कामों को करने से बुद्धि रोकती है उसे आचरण में नहीं ला सकता यदि लाता है तो वह अपने पाँव पर स्वयं कुल्हाड़ी मारता है और जो अपने पाँव पर आप कुल्हाड़ी मारे वह विवेकी बुद्धिमान कैसे कहला सकता है। बुरे कामों से रोकता और शुभ कर्मों की ओर लगाता है जो मनुष्य विवेक के अनुकूल नहीं चलते वे अवश्य नष्ट हो जाते हैं। जब तक इस भारतवर्ष में विवेक रहा। तब तक यह जगद्‌गुरू और चक्रवर्ती राजाओं का उत्पादक था जबसे इस देश ने विवेक को तिलांजलि दी है। तबसे इसकी दुर्गति होने लगी यद्यपि यहाँ दान देने के लिए देश काल और पात्र का विचार आवश्यक था। परन्तु विवेक न होने से इसकी काया पलट गई देश कहने से तात्पर्य यह था कि जिस देश में जिस वस्तु की आवश्यकता हो उस देश में उसी वस्तु का दान किया जाए। शीतप्रधान देशों में कपड़े का दान और उष्ण देश में जल का दान जिसमें अकाल हो वहां अन्न का दान तथा जिस देश में रोग हो वहाँ औषधि का दान देना योग्य है। मूर्खों ने देश के अर्थ तीर्थ स्थान समझ लिये हैं और काल का अर्थ है समय जिस समय कोई किसी विशेष वस्तु का इच्छुक हो, जैसे कोई मनुष्य ग्रीष्म ऋतु में कम्बल बांटे या शीत ऋतु में प्याऊ लगाये तो वह काल नहीं मनुष्यों ने काल शब्द का अर्थ अमावस्या आदि के दिन ले लिये हैं। पात्र का अर्थ था अधिकारी, परन्तु समय ने ऐसा पलटा खाया कि प्राचीन बातें मिथ्या अर्थों में प्रयुक्त होने से लाभदायक होने के स्थान में हानिकारक हो गई। यदि बुद्धिमान लोग और मूर्ख को ब्राह्मण न समझते तो ब्राह्मणों में से विद्या की न्यूनता कदापि न होती और यह जगद् गुरुओं की सन्तान ऐसी दुर्गति को कभी प्राप्त न होती। मूर्ख लोग तो इसे पुण्य समझते हैं कि उन्होंने ब्राह्मणों को भोजन खिलाया परन्तु पण्डित और मूर्ख का विवेक नहीं करते। वे मूर्ख विद्या के नाशक होकर पाप के भागी हो गये। यदि वे मनुष्य विद्वान

–शेष पृष्ठ संख्या 35 पर

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–63 | संवत्सर 2074 | अगस्त 2017 | अंक 7

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादक:
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

अगस्त 2017

सृष्टि संवत्
1960853118

दयानन्दाब्द: 193

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाष:
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
आदर्श गृहस्थी	–महात्मा प्रभुआश्रित महाराज	5–8
मित्रता	–श्यामबिहारी मिश्र	9
सहनशीलता का अभाव	–बाबू सूरजभान वकील	10–13
मृत्यु कुछ नहीं है	–पं. शिवकुमार शास्त्री	14–15
ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र	–पुरुषोत्तमदास	16–19
किताबी शिक्षा	–डॉ0 गोकुलचन्द नारंग	20–23
भाई बालमुकुन्द		24–26
ब्रह्मचर्य से दीर्घायु	–लक्ष्मणनारायण गर्दे	27–28
भारतवर्ष की नींव गाय और गुरुकुलों पर टिकी है	–खुशहालचन्द्र आर्य	29–31
कर्मफल सिद्धान्त		32–34

❀❀❀

वार्षिक शुल्क 150/– | पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

लेखकः डॉ० रामनाथ वेदालंकार

वीर हमें पाप से छुड़ायें

य: प्रथम: कर्मकृत्याय जज्ञे यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम्।
येनोद्यतो वज्रोऽभ्यायताहिं स नो मुंचत्वंहस: ।। –अथर्व0 4.24.6

शब्दार्थ:–

(य: प्रथम:) जिस श्रेष्ठ ने (कर्मकृत्याय) कर्म करने के लिए (जज्ञे) जन्म लिया है, (यस्य प्रथमस्य) जिस सर्वोत्तम सर्वप्रथम की (वीर्यम्) वीरता (अनुबुद्धम्) सर्वविदित है, (येन उद्यत: वज्र:) जिससे उठाया हुआ वज्र (अहिम्) कुटिल को, सर्पसम विषैले को (अभ्यायत) हिंसित कर देता है, (स:) वह इन्द्र, वह आदर्श वीर (न:) हमें (अंहस:) पाप से (मुंचतु) छुड़ा देवे।

भावार्थ:–

वीर लोग राष्ट्र के कर्णधार होते हैं। जब कोई शत्रु–राष्ट्र या अनेक शत्रु–राष्ट्र मिलकर हमारे राष्ट्र से लोहा लेने आते हैं, तब हमारे वीर सैनिक सेनापतियों की अध्यक्षता में उन्हें पीछे खदेड़ देने के लिए, रणभूमि में मूर्छित कर देने के लिए और उनका संहार करके उन्हें धराशायी कर देने के लिए तथा आवश्यकता पड़ने पर स्वयं बलिवेदी पर चढ़ जाने के लिए भी तैयार रहते हैं। वीरों की तपस्या से ही कोई राष्ट्र जीवित–जागृत और शिखरारूढ़ रहता है।

प्रस्तुत मंत्र में उत्कृष्ट सेनानी वीर के कृत्यों को स्मरण करके उससे पाप छुड़ाने की आशा की गयी है। सेनानी वीर कैसा है? उसे देखकर यह लगता है कि इसने इस धरातल पर कर्मों का बीड़ा उठाने के लिए ही जन्म लिया है। कर्म, कर्म, कर्म–यही उसका मूल मंत्र है, ऐसे विकट कर्म जिन्हें करने की आज तक किसी ने हिम्मत न की हो, ऐसे कर्म जो चलती धारा की दिशा बदल देनेवाले हों, ऐसे कर्म जो नीचे गिरे पड़े हुए को ऊर्ध्व अन्तरिक्ष में पहुँचा देनेवाले हों, ऐसे कर्म जो निविड अन्धकार में पड़े हुए को विद्युत् के प्रचण्ड प्रकाश में ले जाने वाले हों, एसे कर्म जो तपती दुपहरी में घनघटा बरसा देनेवाले हों, ऐसे कर्म जो बैलगाड़ी से चलनेवाले को विमान की सैर करानेवाले हों, ऐसे कर्म जो पुण्य के संघर्ष में तीर–कमान के युग को बदलकर परमाणु–बम का युग लानेवाले हों, ऐसे कर्म जो आतंकवाद को समाप्त कर प्रेम और सामंजस्य का वातावरण बनानेवाले हों, ऐसे कर्म जो विशाल कारखानों को खड़ा करके अपरिमित सामान बना देनेवाले हों, ऐसे कर्म जो अग्नियन्त्रों, विद्युतयन्त्रों और सौरयन्त्रों की झड़ी लगा देनेवाले हों, ऐसे कर्म जो कृषि, बागवानी और औषधि–वनस्पतियों की श्रेणी खड़ी कर देनेवाले हों, ऐसे कर्म जो रौरव नरक को स्वर्ग में परिणत कर देनेवाले हों। उनका कर्ता वह वीर है। उसकी वीरता सर्वविदित है। वह जब वज्र को उठाता है तब 'अहि' को मार गिराता है, संर्पसदृश विषैले स्वभाववाले को चूर्णित कर देता है, भट्टी में भून देता है, सब दुर्गुणियों के या तो दुर्गुण दूर कर देता है या उनकी हस्ती मिटा देता है। वह कभी पाप–पंक में लिप्त नहीं होता, अपराधों के संसार में नहीं बसता। उसे आदर्श मानकर हम भी पापों तथा अपराधों से मुक्त हों, सरल निष्पाप जीवन व्यतीत करें। ❁❁❁

गतांक से आगे–

आदर्श गृहस्थी

लेखकः महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

पिताजी आ गए

इतने में पिताजी का आना हो गया। उसने ज्यों ही साधु को बैठा देखा, बड़े हर्ष से पांवों में माथा रक्खा और साधु ने अपने हाथ से उठाया और देखा तो उसे भी नहीं पहचाना। आश्चर्य में रहा, उसने कहा–

महाराज! आज तो मेरा सौभाग्य बढ़ा, आपके दर्शन हो गए और फिर घर में अपने आप पदार्पण किया। मुझे तो अकस्मात् गृह से रुपयों की थैली उठाने के लिए आना पड़ा है बहुत–बहुत धन्यवाद है। मन बड़ा उत्सुक रहा परन्तु आपके स्थान का भी पता न था कि पत्र लिखते।

साधु– अच्छा भाई हमने तो तुमको भी न पहचाना। अच्छा! यह तो पीछे बात करेंगे, तुम्हारे बालक को बहुत देर हो गई है। क्षुधा पिपासा भी इसे लगी है पाठशाला भी इसे जाना है, अनुपस्थित अंकित न हो, (गैर हाजिरी न लगे) नहीं तो भूखा जाएगा, इसे कुछ खाने पीने को दे दो।

गृहस्थी– भगवन! इस की माता अभी आ जाती है। जल का घट लाने को गई प्रतीत होती है। वह आकर देगी मुझे क्या पता? आज उसे क्या खिलाना है? चौके की स्वामिनी तो वही है, मैं कैसे हस्तक्षेप करूं?

साधु– अरे बालक! बड़ी क्षुधा लग रही है ना।

बालक– मुझे तो क्षुधा का विचार ही न रहा। आपके दर्शन से क्षुधा की वृत्ति बदल गई। अब तो यह चिन्ता लग रही थी कि माता जी कहां गई होंगी? कि देर लगा दी। आपको बिना सेवा किये बिठा दिया। माता जी होती तो सेवा करने लग जाती। अब पिता जी आ गए हैं। मैं पाठशाला जाता हूं, फिर मध्याह्न को आकर खाऊंगा।

साधु– तुम्हारा पिता भी बड़ा निर्दयी है कि तुम्हें भूखा देखकर भी दया नहीं करता।

माता का प्रसाद

बालक– न महाराज! ऐसा नहीं। माता जी जब कोई वस्तु देती हैं तो पिता जी ने समझा रक्खा है कि तुम उसे माता का प्रसाद समझा करो और उसे बड़े प्रेम से खाया करो ताकि तुममें प्रेम के भावों की जागृति बनी रहे।

साधु– तो क्या तुम्हारे पिता भी तुम्हारी माता के दिये को प्रसाद स्वीकार करके सेवन करते हैं।

बालक– मुझे इस बात का ज्ञान नहीं। पिताजी जानें। मुझे तो अपना तथा भाईयों के लिये ज्ञान है।

साधु– हां भाई गृहस्थी! तनिक अब तुम बोलो। तुमको क्या समझ कर भोजन देती है और तुम क्या समझ कर लेते हो।

गृहस्थी– भगवन! मुझे तो वह बड़ी श्रद्धा से भेंट के रूप में पेश करती है और मैं हर्ष और प्रेम से लेकर शुभाशीश देता हूं।

बालक प्रस्थान करने को ही था कि माता भरा घट लिए आ गई। ज्यों ही दृष्टि पड़ी और मुख से निकला वाह भगवान्! वाह! आज कैसा उत्तम दिन चढ़ा, मेरा तो आज सुदिन है। घट रखा और बड़े आदर से नमस्कार की।

माता– महाराज! आप को मेरी अनुपस्थिति से अवश्य कष्ट हुआ होगा, मुझे आज कारणवश कुछ चिर हो गया मेरा ध्यान तो बालक की ओर रहा कि वह आ गया होगा और प्रतीक्षा में व्याकुल हो रहा होगा। मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं आपके पग प्रक्षालन (पांव धोकर) करके सेवा करूं।

साधु– हां-हां बहुत शीघ्र सर्वप्रथम यह कार्य करो। बालक बड़ा भूखा है और पाठशाला वापस जा रहा था।

साधु का सत्कार

माता ने झट मिठाई उठाई और पतिदेव को ऐसा संकेत किया कि साधु को पता भी न लगा। तीन थालियों में धरकर आ रही थी कि गृहस्थी ने लोटा ले जल से साधु के हाथ धुलाने के लिए भेंट किया।

साधु– पहले बच्चों को खा लेने दो उसे विलम्ब हो रहा है।

इतने कहते सुनते में देवी तीन थालियां लेकर आ गई साधु देखकर चकित हो गया। अब तीनों को एक ही समय परोस आगे रखी और लस्सी के गिलास ले आई तब सबने मिलकर बैठ मिठाई खाई और बालक चला गया।

साधु– अच्छा भक्त प्यारे! तुम व्यवहारी पुरुष हो, अब आप अपना काम सिद्ध करो और हमें कोई कुटिया एकांत बतला दो।

गृहस्थी– वाह महाराज! वाह! अब आपके दर्शन छोड़ के जाना काहे को? आप कृपया यहां रहिए, हमारे गृह को पवित्र कीजिए। यह सब आपका ही तो है।

प्रतिज्ञा पूरी करो

साधु जिस काम के लिए आए और जो तुम्हारी प्रतीक्षा में होंगे, उनको जो क्षति होगी और तुम्हारे काम से जो अनियमता होगी उसका पाप तो हम पर लगेगा और हम गृहस्थियों के गृह में कैसे रहें, हमें तो एकान्त चाहिए, हम साधु हैं।

गृहस्थी– अच्छा आपकी आज्ञा है तो मैं चला जाता हूं परन्तु महाराज को हम अन्यत्र नहीं जाने देंगे। अब मध्याह्न होने वाला है, भोजन तैयार होता है।

साधु– अच्छा तुम जाओ और भोजन तक यहां हैं। गृहस्थी नमस्कार करके चल दिया।

साधु– देखो देवी! तुम अपने चुल्हे का काम करो और हम जब तक कहीं बाहर जा बैठते हैं। तुम अकेली स्त्री घर में हो। हम बैठना अच्छा नहीं समझते और फिर हम यहां बैठकर करेंगे भी क्या?

देवी– मैं ऊपर के गृह में एकान्त बना देती हूं, बाहर कहां जा बैठेगें और यदि यहां भी बैठे रहें, तो यह भी एकान्त है।

साधु– ऊपर हो अथवा नीचे, एकान्त भी हो, तब भी एक अकेली देवी ही गृह में हो, शास्त्र उसके समीप बैठना वर्जित करते हैं।

देवी– आप तो साधु हैं, साधक तो नहीं पुनः आपको ऐसा संशय क्यों?

साधु– शास्त्रों की आज्ञा माननी चाहिये।

देवी– मुझे तो ऐसा भ्रम नहीं हुआ। शास्त्र क्या-क्या कहते हैं?

शास्त्र आज्ञा का भाव

साधु– शास्त्र कहते हैं घर में अकेली स्त्री ही चाहे माता हो अथवा भग्नि अथवा पुत्री भी हो, तो पुरुष को उसके साथ नहीं रहना चाहिये।

देवी– महाराज! यह तो आप ही स्पष्ट कर रहे हैं कि किसी पुरुष को किसी अकेली स्त्री के पास अथवा साथ न रहना चाहिए। आप जब साधु बन चुके हैं तो आप में वह पुरुषत्व कहां रह गया जो गृहस्थी में होता है। गृहस्थी के लिए तो स्त्री जाति का रूप भिन्न-भिन्न प्रकार को होता है। चूंकि उसमें विषय वासनाएं उदार रूप रहती हैं जिनके उत्तेजित होने का कोई समय और विश्वास नहीं इसलिए माता, कन्या तथा भग्नि तक के साथ अकेला बैठना भी वर्जित कर दिया। क्या आप माता और भग्नि की छाती तथा गोदी (पट्टों) पर अकेले वर्षों तक नहीं रहे। क्या उस समय आप पुरुष न थे?

साधु– देवी? उस समय तो मेरी विषय वासनाएं और पुरुषत्व सुप्त अवस्था में थी।

देवी– तो क्या मनुष्य जब साधना करते-करते अपनी साधना को सिद्ध कर लेता है और साधु बन जाता है तो तब उसके विषय वासनाओं की वही अवस्था नहीं हो जाती जो एक शिशु की सुप्त अवस्था की होती है?

साधु– हां वैसी हो जाती है। जब तक न हो वह साधु कैसे बन सकता है।

देवी– तो आपको मैं किस रूप से प्रतीत होती हूं।

साधु– देवी के रूप में।

देवी– यदि यह सत्य है तो एक देवी साक्षात देवी के साथ रहते हुए किसी के मन में अदिव्य गुण का उठाना कैसे हो सकता है? और फिर आपका प्रश्न तो एकान्त वास का है। यदि मन इन्द्रियों में विषय में भ्रमने वाला है तो चाहे निर्जन वन की कुटिया भी हो तब भी उसे एकान्त नहीं और यदि मन विषयों से उपराम हो चुका है और आत्मा से युक्त परमात्मा में लगा हो तो संसार और बाजार भी उनके लिए

एकान्त है।

साधु– बहुत अच्छा। तुम ऊंचा ज्ञान रखती हो। हमें बड़ी प्रसन्नता है परन्तु एक संशय उठता है कि देवी के अन्दर इतनी निर्दयता कठोरता अपनी सन्तान के प्रति कभी नहीं देखी गई। तुम्हारा बालक पुत्र आया, उसे क्षुधा लग रही थी और तुम्हारे भय से अपने खाने की वस्तु अपने गृह से भी नहीं उठा सका। इससे अधिक क्या निर्दयता होगी।

देवी– भगवन्! माता की सच्ची दयालुता तथा प्रेम तो अपनी सन्तान से यही हो सकती है कि उसे दिव्यगुण युक्त बना दे।

मनुर्भव

वेद ने कहा है 'मनुर्भव जनया दैव्यं जनं' हे मनुष्य! तू मनुष्य बन! और अपनी सन्तान को दिव्यगुण वाला बना।

माता किसे कहते हैं

माता का अर्थ भी यही है जो मैंने अपने पतिदेव से श्रवण कर रखा है कि माता वही है जो (क) मति को बनावे (ख) मान वाला बनावे। गर्भ में तो मति को बनाती है और उत्पन्न होने पर उसे मान वाला बनाने का यत्न करती है।

माता–पिता का कर्त्तव्य

हम तो दोनों (स्त्री–पुरुष) माता के नाते अपने बालकों को छोटे–छोटे पापों को जिनको घर की चार दीवारी के अन्दर पाप नहीं समझा जाता और जिन पापों के अभ्यास से बालक बड़े होकर कुसंस्कारी बन जाते हैं, उनके सुप्तसंस्कार जागृत होकर बलवान बन जाते हैं, और बड़े होकर जनता की दृष्टि से पतित कर देते हैं, उन्हीं से दूर रहने अथवा रोकने के लिए बड़े प्रेम और प्यार से समझाते हैं और यही माता का कर्त्तव्य है।

दूसरे बालक का आगमन और परीक्षा

अभी यह वार्ता हो रही थी कि दूसरा बालक आ गया, साधु को प्रणाम किया।

साधु– तुम्हारा नाम क्या है?

बालक– मुझे सुकर्मी कहकर बुलाते हैं।

साधु– यह देवी तुम्हारी क्या लगती है?

बालक– मेरी माता है।

साधु– तुम को क्या देती है और क्या करती है?

बालक– मुझे अन्न और ज्ञान आदि सब कुछ देती है और प्रेम करती है और संवार सुधार करती है।

साधु– किस प्रकार का ज्ञान देती है।

बालक– जिससे हम बालक पाप से बचे रहें।

–(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

मित्रता

लेखकः– श्यामबिहारी मिश्र

(1) चापलूस अपने सिद्धान्तों की कुछ भी परवाह किए बिना आपके सभी विचारों से सहमत होगा, किन्तु मित्र ऐसा नहीं करेगा।

(2) चापलूस एक सिद्धान्त पर न चलकर पृथक्-पृथक् समयों में आपके विपरीत विचारों का भी समर्थन करेगा, जो बात मित्र से न होगी।

(3) चापलूस आपकी उचित से अधिक प्रशंसा करेगा, यहां तक कि आपके साधारण कथनों को भी सातवें आसमान पर चढ़ा देगा।

(4) यदि आपकी किसी सच्चे मित्र अथवा कुटुम्बी से मन–मैल हुई, तो चापलूस उसे और भी बढ़ाने का प्रयत्न करेगा।

(5) जब आपको चापलूस की सहायता की आवश्यकता न होगी, तब वह सहायता करने की परम प्रगाढ़ इच्छा प्रकट किया करेगा, किन्तु समय पर झट निकल जायगा। कहा भी है कि–

तुलसी सम्पति के सखा परत विपत्ति में चीन्हि।
सज्जन सोना कसन विधि विपति कसौटी दीन्हि।।
रहिमन विपदाहू भली जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में जानि परत सब कोय।।

इस विषय में एक बात का सदैव ध्यान रखना परमावश्यक है कि हमें अपने मित्र से कभी ऐसी सहायता की आशा न रखनी चाहिए जो स्वयं हम काम पड़ने पर कदाचित उसे न देते। मित्रता की वे उच्च परीक्षाएँ, जिनका वर्णन यत्र तत्र पाया जाता है, किसी साधारण मित्र के लिये व्यवहृत करनी और फिर उसे व्यर्थ ही बदनाम करना तथा दूषण लगाना अनुचित है। सौ में प्रायः साढ़े निन्यानवे 'मित्र' आपके केवल जान पहचानवाले होते हैं न कि वास्तविक मित्र। उनसे कोई बड़ी आशा रखना मूर्खता की बात है। इनके अतिरिक्त जो आपके दो चार वास्तविक मित्र भी हों, उन तक से उचित सहायता मात्र पाने की आप आशा रख सकते हैं न यह कि वे आपके लिये अपना तन मन धन अर्पण करते फिरें। यदि इन बातों पर विचार रक्खा जाय तो संसार में आशाभंग के कुछ कम उदाहरण मिलेंगे। ❃❃❃

सत्साहित्य का प्रचार–प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

सहनशीलता का अभाव

लेखकः बाबू सूरजभान वकील

जिस प्रकार इस संसार में मनुष्यों की सूरत शक्ल और रंग रूप में भेद है, उसी प्रकार उनके स्वभाव, आदतों, विचारों, इच्छाओं, जरूरतों और चाल-ढाल में भी भेद है। यही कारण है कि कोई नमकीन या चटपटी चीजें खाना पसन्द करता है और कोई मीठी या खट्टी, कोई खेती करना पसन्द करता है और कोई व्यापार, कोई कारीगरी करता है और कोई नौकरी, कोई तड़क-भड़क की पोशाक पहिनता है और कोई सीधी सादी, कोई अकड़कर चलता है और कोई नम्रता से। परन्तु प्रत्येक बात में इतना अन्तर रहने पर भी मनुष्य का काम आपस के मेल-जोल और पारस्परिक सहायता के बिना नहीं चल सकता है, इसलिए भिन्न-भिन्न प्रकृति और भिन्न-भिन्न विचारक मनुष्यों को सब प्रकार के कामों और सब प्रकार की बातों को हर्ष के साथ सहन करना पड़ता है और इसी सहनशीलता से उनका मेल-जोल निभता है।

देखिए, एक दुधमुंहा बच्चा जो न तो समझ ही रखता है और न शक्ति, अपनी माता की गोद या उसके बिस्तरों में मल-मूत्र कर देता है और उसकी माता इस बात पर जरा भी बुरा नहीं मानती है; बल्कि वह खुशी के साथ उसके मल मूत्र को साफ कर देती है। क्योंकि यदि माता अपने बच्चे के मलमूत्र करने को सहन न कर सके तो न तो वह उसे अपने पास रख सके और न उसका पालन ही कर सके। इसी प्रकार यदि एक घर में दो भाई रहते हों और एक भाई को खाना खाकर दोपहर के समय गाने बजाने और दिल बहलाने का शौक हो और दूसरे को उसी समय थोड़ी देर सोने की आदत हो, तो दोनों भाईयों का उस घर में रहना तभी निभ सकता है जबकि न तो सोनेवाला अपने भाई के गाने-बजाने को बुरा समझे और न गाने-बजाने वाला अपने भाई के सोने से घृणा करे, बल्कि गाने-बजानेवाला अपने भाई के सोने के समय को बचाकर गावे बजावे और सोनेवाला अपने भाई के गाने बजाने के समय को टाल कर सोवे; यही नहीं, दोनों अपने-अपने शौकों को एक दूसरे के सुख के लिए न्योछावर कर दें, अर्थात् एक दूसरे के सुख का इतना ज्यादा ख्याल रक्खें कि यदि एक भाई के गाते बजाते रहने के कारण दूसरे भाई को किसी दिन बिलकुल सोने का मौका न मिले, या एक भाई के सोते रहने की बजह से दूसरे भाई को किसी दिन बिलकुल गाने का बजाने का अवसर न मिले तो वे कुछ भी बुरा न मानें।

इसी प्रकार यदि एक भाई को अरहर की दाल खाने का शौक हो और दूसरे को उड़द की दाल का, तो उनकी रसोई में दोनों प्रकार की दालें बननी चाहिए; किन्तु यदि वे ऐसे गरीब हों कि दोनों प्रकार की दाल न बनवा सकते हों तो किसी दिन अरहर की दाल बननी चाहिए और किसी दिन उड़द की। ऐसा करने से जिस दिन जिस अपनी रुचि के विरुद्ध दाल खानी पड़े उस दिन उसे बुरा नहीं मानना चाहिए बल्कि प्रत्येक को यही प्रयत्न करना चाहिए कि चाहे मेरे शौक के अनुसार चीज बने या न बने, परन्तु मेरे साथी

के शौक में फरक न पड़ने पावे। ऐसा करने से ही उनका मेल-जोल सदा निभता जावेगा, अन्यथा नहीं। इसी प्रकार यदि एक पड़ौसी के यहाँ मौत के हो जाने से शोक छा रहा हो और दूसरे के यहाँ बेटे के विवाह की खुशी मनाई जा रही हो तो दोनों को बुरा नहीं मानना चाहिए; बल्कि शोक वाले को चाहिए कि वह अपने पड़ौसी की खुशी में विघ्न न पड़ने देने के लिए अपने शोक को यहाँ तक कम कर दे कि अपने पड़ौसी को मालूम भी न हो कि पड़ौस में शोक हो रहा है। इसी तरह विवाह की खुशी मनाने वाले को भी चाहिए कि वह अपनी खुशी बिलकुल चुपचाप ही मना ले। इसी प्रकार यदि बाजार में किसी के विवाह का जुलूस निकल रहा हो और चलने फिरने वालों को कुछ समय के लिए रुक जाना पड़ा हो, तो इसमें इनको जरा भी बुरा नहीं मानना चाहिए और मन में ऐसा विचार नहीं लाना चाहिए कि किसी तरह यह बला टले तो हम आगे बढ़ें; बल्कि जो खुशी का भाव अपनी बारात का जुलूस निकालते समय होता है वही दूसरों की बारात निकलते समय भी होना चाहिए। इसी प्रकार और भी हजारों बातों को समझ लेना चाहिए कि जिनमें मिल-जुलकर रहने के कारण बहुत कुछ सहन करना पड़ता है। परन्तु इस प्रकार सहनशीलता में जो कष्ट उठाना पड़ता है वह उस सुख का हजारवाँ हिस्सा भी नहीं है जो इसके बदले में मिल-जुलकर रहने से मिलता है। इ सी कारण मनुष्य बहुधा इस प्रकार के कष्ट सहन किया करते हैं और अपनी इस सहनशीलता से बहुत कुछ मेल-जोल भी पैदा कर लेते हैं। परन्तु आश्चर्य का विषय है कि धर्म के मामले में यह उत्तम नियम न जाने क्यों टूट जाता है और धर्म का नाम आते ही सब मनुष्य अन्य धर्मवालों से न जाने क्यों ऐसे बागी हो जाते हैं कि मानों इनका आपस में न कभी मेलजोल हुआ है और न आगे होने की आशा है। इसी कारण धार्मिक पर्वों या जुलूसों के समय मनुष्य के सिर पर ऐसा जबरदस्त भूत सवार हो जाता है जो अगले पिछले सभी सलूकों और सद्भावों को तोड़ डालता है और आँखों पर ऐसी चर्बी चढ़ा देता है कि जिससे अन्य धर्मी बिलकुल गैर और ऐसे घृणित नजर आने लगते हैं कि मानों विधाता ने किसी समय उनको भूल से बना दिया है और भूल से ही उनको अब तक जीवित रख छोड़ा है।

यद्यपि धार्मिक उत्तेजना का वह समय निकल जाने पर धर्म का भूत भी सिर पर से उतर जाता है और लोग फिर आपस में मेल जोल करने की कोशिश करने लगते हैं; परन्तु जिस प्रकार कि टूटा हुआ हीरा नहीं जुड़ता है, उसी प्रकार ठेंस खाया हुआ मन भी फिर नहीं मिलता है। यद्यपि भिन्न-भिन्न धर्मों के वे लोग जाहिर तौर पर फिर मिलने जुलते लगते हैं, परन्तु वह मिलना बिलकुल बनावटी या दिखाऊ होता है। इस धार्मिक द्वेष के कारण हमेशा खटपट बनी रहती है और समय-समय पर दोनों धर्मवालों को हानि उठानी पड़ती है।

जिस प्रकार खाने-पीने, पहिनने-ओढ़ने, और संसार के सब व्यवहारों में मनुष्य की रुचि भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है और अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उनके भिन्न-भिन्न व्यवहारों से किसी को कुछ हानि नहीं होती है, बल्कि इससे इस विचित्र संसार की शोभा ही बढ़ती है और विचित्र प्रकार की प्रवृत्तियों को देखकर मनुष्य की विचारशक्ति बहुत कुछ उन्नति करती जाती है; साथ ही लोगों को सहज ही बहुत

सी बातों का अनुभव प्राप्त होता जाता है और उनको अपनी सुख-शान्ति के नवीन-नवीन उपाय निकालने और अधिकाधिक आगे बढ़ते जाने का अवसर मिलता जाता है, उसी प्रकार यदि परलोक सम्बन्धी कामों में भी मनुष्यों के भिन्न-भिन्न मत और भिन्न-भिन्न प्रवृतियाँ रहें तो इसमें कोई हानि नहीं है। बल्कि धर्मसम्बन्धी और विचारसम्बन्धी स्वाधीनता मिलने से उनमें अधिकाधिक खोज होने, नई-नई बातों के निकलने और दिन परदिन उन्नति होने की संभावना रहती है। यदि धर्म के विषय में भी सब लोग इसी प्रकार की स्वाधीनता मान लें, अर्थात् जिसके मन में जो आवे वही धर्म माने और जिसे जो धर्म पसन्द न हो वह न माने, तो इससे धर्म से उत्पन्न होनेवाले वे सब झगड़े मिट जायँ जो आये दिन हुआ करते हैं और जिनके कारण भिन्न-भिन्न धर्मवालों में मनमुटाव होकर सदा के लिए वे एक दूसरे के दुश्मन बने रहते हैं।

परन्तु इस प्रकार की धार्मिक स्वतंत्रता मिलने का यह अर्थ नहीं है कि एक धर्मवाला दूसरे धर्म वाले को अपने धर्म की महत्ता और सत्यता न समझावे, या अन्य धर्म की त्रुटियाँ प्रकट न करे। अवश्य करे, परन्तु प्रेम और मुहब्बत से करे। जैसे कि उड़द की दाल खानेवाले दूसरे भाई को उड़द की दाल की बड़ाई और अरहर की दाल की बुराई समझाता है; या जिस प्रकार देशी वैद्यों से इलाज करानेवाला एक बीमार अंग्रेजी डाक्टर से इलाज करानेवाले दूसरे बीमार को देशी ओषधियों के गुण और अंग्रेजी ओषधियों के अवगुण बतलाता है, और जिस प्रकार इन सांसारिक विषयों में एक दूसरे की बात न मानने पर दोनों में से कोई भी बुरा नहीं मानता है और न उसके लिए लड़ने झगड़ने या जबर्दस्ती करने को तैयार होता है, उसी प्रकार धार्मिक विषयों में भी एक दूसरे की बात न मानने पर कुछ बुरा नहीं मानना चाहिए और न इस विषय में किसी प्रकार की जबर्दस्ती ही करनी चाहिए। परन्तु धर्म के विषय में इससे बिलकुल उल्टी बात नजर आती है, अर्थात् सांसारिक बातों में तो भिन्न-भिन्न रुचि और भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति के मनुष्य एक दूसरे को समझाते हैं, अपनी-अपनी रुचि और प्रवृत्ति के हानि लाभ पर प्रेम के साथ बहस करते हैं और न मानने पर कुछ बुरा नहीं मानते हैं, परन्तु धर्म के विषय में बात करने से भी डरते हैं। सोचते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि कोई किसी बात का बुरा मान जाय और बैठे बिठाये आपस में रंज बढ़ जाय या लड़ाई ठन जाय। इस कारण सब लोग इसी में कुशल समझते हैं कि भिन्न-भिन्न धर्मवालों के बीच में धर्म की कोई बात ही न छिड़ने पावे। यही कारण है कि बहुधा सब लोग धार्मिक बातों के छेड़ने में हिचकते हैं और यदि किसी कारणवश कभी भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बियों के बीच में कोई धर्मसम्बन्धी बात छेड़ी भी जाती है तो सरल भाव से सत्यता के निर्णय करने की कोशिश नहीं की जाती है, बल्कि अपनी बुद्धि का सारा जोर लगाकर और सब प्रकार का मायाजाल फैलाकर अपने-अपने धर्म की बात को ऊँची रखने का प्रयत्न किया जाता है, और ऐसी खींचातानी की जाती है कि मानो स्कूल के विद्यार्थी दो दल बनकर और आपस में हर जीत की बाजी लगाकर रस्से को अपनी-अपनी तरफ खींचने की कोशिश कर रहे हों। फल इसका यह होता है कि यदि भाग्यवशात् आपस में मनमुटाव और लड़ाई दंगा न भी हुआ,

तो भी एक दूसरे के धर्म से कुछ न कुछ द्वेष तो अवश्य ही बढ़ जाता है।

अभिप्राय यह है कि इस संसारव्यापी धर्मयुद्ध ने केवल मनुष्यों के मेलजोल के शुभ प्रबन्ध में ही अन्तर नहीं डाल रक्खा है, बल्कि धर्मविषयक बातों के निर्णय करने और उसे एक दूसरे को समझने के अत्युत्तम मार्ग को भी बन्द कर दिया है। ऐसी दशा में मनुष्यों में ये अनेक धर्म क्यों फैले, किन-किन कारणों से यह धर्मयुद्ध जारी हुआ तथा किन-किन उपायों से यह महायुद्ध शान्त होकर मानवजाति में सुख-शांति की प्रतिष्ठा की जा सकती है, इत्यादि प्रश्नों का निर्णय करना मनुष्य के लिए अत्यावश्यक है।

तपोभूमि मासिक के पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका प्रतिमाह आप तक पहुँच रही है। हमारा हर सम्भव प्रयास यही रहता है कि पत्रिका में उच्चकोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख प्रकाशित करके आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्तों के अनुसार प्रचार करते हुये यह पत्रिका जन-जन तक पहुँचे। ताकि वे इसका पूर्णतया लाभ प्राप्त कर सकें। लेकिन यह तभी सम्भव है जब आप सबका सहयोग हमें मिले।

'तपोभूमि' मासिक के पाठकों से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 150/- एक सौ पचास रूपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 1500/- एक हजार पाँच सौ रूपये भेजकर पत्रिका का लाभ उठायें।

हम आपको वार्षिक विशेषांक सहित पत्रिका पहुँचाते रहेंगे। आपके सहयोग व हमारे परिश्रम से निरन्तरता बनी रहेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार भी होता रहेगा।

हमें अपने ग्राहक महानुभावों से यही अपेक्षा है कि बिना विघ्न कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि आप अपने परिश्रम से नवीन ग्राहक बनवाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

-धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या-

इण्डियन ओवरसीज बैंक
शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, जयसिंहपुरा, मथुरा
*I F SC Code- I OB A 0001441 **'सत्य प्रकाशन'** खाता संख्या- 144101000002341*

सत्य प्रकाशन के पुनः प्रकाशित उपलब्ध प्रकाशन

शुद्ध रामायण सजिल्द	मूल्य 220	गृहस्थ जीवन रहस्य	मूल्य 20
शुद्ध रामायण अजिल्द	मूल्य 170	श्रीमद् भगवद्गीता एक सरल अध्ययन	मूल्य 20
शुद्ध हनुमच्चरित	मूल्य 60	सन्ध्या रहस्य	मूल्य 20
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	मूल्य 40	गीता तत्व दर्शन	मूल्य 20
यज्ञमय जीवन	मूल्य 30	दयानन्द और विवेकानन्द	मूल्य 15
भारत और मूर्तिपूजा	मूल्य 30	बाल मनुस्मृति	मूल्य 12
मील का पत्थर	मूल्य 20	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	मूल्य 12
भ्रांति दर्शन	मूल्य 20	ओंकार उपासना	मूल्य 12
चार मित्रों की बातें	मूल्य 20	दादी पोती की बातें	मूल्य 10
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	मूल्य 20		

मृत्यु कुछ नहीं है

लेखक : पं. शिवकुमार शास्त्री

लोग शरीर से अमर होना असम्भव समझते हैं। बड़े-2 महात्मा कहते हैं कि सब कुछ हो सकता है पर यह नहीं हो सकता। कहते हैं कि काल महाबलवान् है; इसका जीतना मनुष्य के लिए असम्भव है। इन सब बातों के होते हुए भी इस बात को सभी चाहते हैं, कि हम अमर हो जायं। मरना कोई नहीं चाहता। संसार में सबसे भयंकर वस्तु 'मृत्यु' है। संसार में मृत्यु-समाचार से बढ़कर अशुभ समाचार कोई नहीं है।

अरब खरब लों दरब है,
उदय अस्त लों राज।
तुलसी एक दिन मरन जो,
आवहिं कौने काज।।

सत्य है संसार का सारा पदार्थ, सारा ज्ञान, सारी प्रभुता व्यर्थ है यदि एक न एक दिन मरना निश्चित है। अतः अमर होना सभी चाहते हैं। संसार के सारे अच्छे-2 पदार्थों में यदि अमरत्व भी मिलाकर रख दिया जाय और मनुष्य से कह दिया जाय, कि इसमें से जो चाहो एक पदार्थ उठा लो, तो वह अमरत्व ही उठावेगा। अमरत्व को असम्भव समझ कर ही मनुष्य दूसरे पदार्थों के लिए दौड़ता है।

संसार उन्नति कर रहा है। सांसारिक मनुष्यों ने अपनी बुद्धि से क्या नहीं कर दिखाया। लगभग सौ वर्ष पहले जो बात असम्भव मानी जाती थी वह सम्भव हो गई। बहुत से विद्वानों ने तो यह कह दिया है कि संसार में असम्भव कुछ नहीं-यत्न करते जाओ। जिस तरह बड़े-2 वैज्ञानिक और वस्तुओं के आविष्कार में लगे हैं उसी प्रकार कुछ लोग अमृतत्व की भी खोज में लगे हैं। मनुष्य का सबसे बड़ा लक्ष्य अमृतत्व को पा जाना ही है। मनुष्यों को उस दिन कितनी प्रसन्नता होगी इसका अनुमान करना भी कठिन है, जिस दिन वह मृत्यु को जीत लेगा। पर बहुत से लोग ऐसा भी कहते हैं कि अमर होना बेकार है यदि जरा रोग और निर्बलता शरीर के साथ ही रही; रोगी निर्बल और बुड्ढा हो कर जीने से मरना ही अच्छा है। पर, सोचने की बात यह है कि जो मनुष्य मृत्यु को जीत सकेगा वह क्या निर्बलता, जरा और रोग को न जीत सकेगा? ऐसा हो नहीं सकता। जरा और निर्बलता मृत्यु की छोटी बहन है, इनका जीतना मृत्यु के जीतने से आसान है। जिस उपाय से मृत्यु जीती जायगी उसी उपाय से इनका भी नाश किया जा सकता है।

बहुत से विद्वान्-लोमस, मार्कण्डेय, श्वेतऋषि, नन्दी, अश्वत्थामा, कागभुशुण्डि, भर्तृहरि और गोरक्षनाथादि का दृष्टान्त देकर अमर होना असम्भव नहीं कहते। बहुत से योगी तो ऐसे हैं जो कहते हैं कि

हिमालय के जंगलों में सैकड़ों महात्मा हैं जो अमर हैं। पुराने लोग अमर हुए हों या न हुए हों, हिमालय में अमर लोग हों या न हों, पर हमने यहां पर जिस ज्ञान का वर्णन किया है–उसे जानकर, उसके अनुसार चल कर और उस पर दृढ़ विश्वास कर लोग अवश्य अमर हो सकते हैं।

मृत्यु या काल बड़ा प्रबल है– यह बात नहीं है। मृत्यु संसार के सब वस्तुओं से बलहीन है। मृत्यु उसी का नाम है जहां सब प्रकार की शक्तियों का अभाव है। मृत्यु के निकट आते–2 मनुष्य कमजोर होने लगता है; यहां तक कि मृतक शरीर सर्वथा शक्तिहीन हो जाता है। जब तक जीवन है तब तक शक्ति है। शक्ति और जीवन में कुछ भेद नहीं है; दोनों एक हैं। ठीक, इसी तरह शक्ति या बल के अभाव का नाम मृत्यु है। शक्ति का अभाव या मृत्यु दोनों एक हैं। जहां शक्ति है वहां मृत्यु नहीं मानी जा सकती।

मृत्यु क्या चीज है– यदि इस पर विचार किया जाय तो यही मालूम होगा, कि शक्ति के अभाव का ही नाम मृत्यु है। मृत्यु न शरीर का नाम है न आत्मा का; किन्तु जीवन और बल के अभाव का ही नाम मृत्यु है। अतः इस मृत्यु को बलवती कहना भूल है। पर लोगों का यह दृढ़ विश्वास है कि मृत्यु बड़ी प्रबल है। यद्यपि वह प्रबल नहीं है पर इस विश्वास ने उसे सचमुच प्रबल बना दिया है। मनुष्य के इस विश्वास ने ही मृत्यु को निमंत्रण दे रक्खा है।

जीवन के सामने मृत्यु का कुछ चलता नहीं। जीवन आता है आत्मा से। आत्मा और जीवन एक वस्तु है। जीवन, प्राण, आत्मा या जीव सब एक ही पदार्थ के नाम हैं। जीवन रहने से ही शरीर में सब प्रकार का बल आता है।

आत्मा या जीव शक्ति और बल का भंडार है। आत्मा सर्वशक्तिमान है। इस सर्वशक्तिमान आत्मा का निर्जीव मृत्यु कुछ नहीं कर सकती। मनुष्य अपने विश्वास से मरता है। मनुष्य का यह विश्वास है कि उसे एक न एक दिन अवश्य मरना है; इसी से उसे एक न एक दिन अवश्य मरना पड़ता है। यदि हमें, यह दृढ़ विश्वास हो कि मृत्यु हमारी कुछ नहीं कर सकती तो वह सचमुच कुछ नहीं कर सकती। कर वह सकता है जिसके पास कुछ बल हो। पर मृत्यु में तो कुछ है ही नहीं। 'कुछ नहीं' या 'अभाव' का ही नाम मृत्यु है। भाव और अस्तित्व आत्मा में है। आत्मा में ही बल है। पर बड़े आश्चर्य की बात यह है कि लोग जितना मृतक शरीर से डरते हैं उतना सजीव से नहीं। सुनसान मैदान में रात को मृतक शरीर को देखकर कितने डर कर गिर पड़े हैं और प्राण तक छोड़ दिए हैं। यह विश्वास की ही महिमा है। अपना विश्वास ही अपना प्राण–घातक होता है। नहीं तो बेचारा मृतक शरीर किसी को नहीं मारता, न उसमें मारने की शक्ति ही रहती है। किन्तु डरने वाले का विश्वास ही उसे मार डालता है।

एक मेडीकल कालेज का किस्सा है कि इस कालेज के एक कमरे में परीक्षा के लिए एक मृतक शरीर पड़ा था। एक दिन, रात में कालेज के कुछ छात्रों में यह बात चली कि, क्या हममें से कोई उस कमरे में जाकर उस मुर्दे की एक उंगली काटकर ला सकता है? रात अधिक हो गई थी; कमरे में किसी प्रकार की रोशनी भी न थी। एक छात्र जाने के लिए तैयार हुआ। कुछ रुपयों की बाजी भी लगी। छात्रावस्था में हंसी

–शेष पृष्ठ संख्या पर

गतांक से आगे–

ऋषि दयानन्द सरस्वती
का जीवन चरित्र

रचयिताः परम ऋषिभक्त पुरुषोत्तमदास, मथुरा

उस बहेलिया–पाश में फंसता क्यों परिव्राट्।
किया प्रबोध महन्त को दिखला आत्म–विराट्।।

है मुझे परम धन की इच्छा इस नश्वर धन की चाह नहीं।
कई गुना पितृ वैभव त्यागा क्या रुक सकती यह राह कहीं॥
मैं हूं अनन्त–पथ का राही मध्य में कहीं विश्राम कहाँ?
चेला बनने की बात दूर, क्षण भर भी अब न विराम यहाँ॥
यह कहकर मुनिवर ने तत्क्षण ही माया का फन्दा काट दिया।
परमेश पुत्र बनकर सच्चे जग–उद्धारक पद–लाभ किया॥
है धन्य–2 ऋषि धन्य तुम्हें मोहक माया को त्याग दिया।
विकसित–यौवन आह्वान अनसुना करके पूर्ण विराग लिया॥

प्रातः जोषी मठ चले आत्म दीप्ति को धार।
रवि की किरणें थीं जभी निज कर रहीं पसार।।

जोषी मठ में श्रीयतिवर ने बहु साधु–समागम लाभ लिया।
पर मिली नहीं परितृप्ति अतः बद्रीनारायण वास किया॥
वहाँ 'रावल जी' से भेंट हुई थे प्रेममूर्ति, पर उपकारी।
आतिथ्य किया बहुविधि इनका अरुव्यथा हरीमन की सारी॥
पर्वत प्रदेश के भ्रमण हेतु चल दिये प्रातः हो उठ करके।
सरिता प्रवाह जिस ओर से था उस तरफ चले यह चढ़ करके॥
प्रकृति के पावन प्रांगण की शोभा निहारते जाते हैं।
कुछ आगे मार्ग निरुद्ध मिला असमंजस में पड़ जाते हैं॥

किंकर्तव्य विमूढ़ हो करने लगे विचार।
उतर अलखनन्दा सरित पहुँचूं परली पार।।

थे स्वल्प वस्त्र तन पर इनके हिम तुल्य वायु सन-2 करती।
हिम शिला खण्ड पूरित सरिता अति वेगातुर से थी बहती॥
साहस को तोल रहा मानो नद वेग शब्द बहु करता था।
धीरे-धीरे करके प्रवेश यह तरुण तपस्वी बढ़ता था॥
तलवों से बहती रक्त धार हो गया शून्य सारा शरीर।
है शक्ति कहाँ वह शब्द में अंकित हो जिससे महा पीर॥
'लूं' जल-समाधि' अवसाद जनित यह भाव हृदय उमगाया है।
बस तत्क्षण ही वह 'मृत्यु-विजय' का लक्ष्य ध्यान में आया है॥

दैवी विद्युत् रेख से मन में हुआ प्रकाश।
कोई खींचे तीर पर हुआ उन्हें आभास॥

साहस का ज्वार अपार उठा इनकी तट पर ला पहुँचाया।
जड़वत् ये चिर तक पड़े रहे तन धीरे-धीरे गरमाया॥
चेतना जगी तो एक बार चहुँ तरफा दृष्टि घुमाई है।
दूरात् पुरुष दो आते थे वे इनको पड़े लखाई है॥
आ निकट कहा-'घर चलो प्रभो!' दोनों मृदु शब्द उचारे हैं।
पाकर नकार में दृढ़ उत्तर वे अपनी राह सिधारे हैं॥
रात्रि में पहुँच मन्दिर सोये प्रातः उठ आगे धाये हैं।
काशीपुर और रामपुर हो द्रोणासागर पर आये हैं॥

द्रोणासागर वास में हुआ एक दिन ध्यान।
अभी अलक्षित ही पड़ा जीवन-लक्ष्य महान॥

दिन पर दिन बीत रहे अमूल्य मानव-तन रिसता जाता है।
जीवन जल-बिन्दु प्रपात बना कब कौन यहाँ ठहराता है?
विकसित जीवन की नवल धवल कलिका कल प्रातः खिली न खिली।
मैं अब सवेग लक्ष्यार्थ बढूं पुनि अवसर-रेख मिली न मिली॥
बाधायें तो भगवन् प्रसाद हैं आगे बढ़ने वालों को।
मिलता प्रशस्त पथ ज्वालाओं से फाग खेलने वालों को॥
अब खोज करूं ज्ञानी गुरु की शिव दर्शन लाभ मिले जिससे।
मन के संशय हों दूर सभी मृत्यु का पाश छूटे जिससे॥

सच्चे गुरु की खोज में छूटा मन का चैन।
भ्रमण माँहि दिन बीतता रात्रि नींद नहीं नैन॥

शंकर–दीवाना चल निकला बहु ग्राम शहर नियराये हैं।
पर्वत नद नाले लाँघ एक निर्जन अरण्य में आये हैं॥
एक रीछ भयानक रव करता इस ओर अचानक धाया है।
प्रभु–पुत्र यती की निर्भयता ने उसका मान घटाया है॥
पृथिवी पर दण्ड टेक करके हुंकार दीर्घ यतिवर ने दी।
ओजस् युत तेजोमय छवि लख रीछ ने राह अपनी पकड़ी॥
आगे था मार्ग दुरूह और अति गहन झाड़ियाँ छाई थी।
कहीं रेंग पेट के बल निकले कहीं सारी देह छिदाई थी॥
बस इसी बीच गुरु विरजानन्द की कीर्ति कहानी सुन पाई।
व्याकरण सूर्य दण्डी जी की यश–सुरभि खींच मथुरा लाई॥

कार्तिक मास सुहावना शुक्ल पक्ष गुरुवार।
सम्वत् उन्नीस सौ सत्रह पहुँचे दण्डी द्वार॥

ऊषा नागरि अम्बर पन–घट पर तारा घट थी डुबा रही।
सोतों को और सुलाती थी जाग्रत जन–मन को जगा रही॥
थे कहीं प्रभाती के मृदु स्वर अलसाई आँखें खोल रहे।
कुछ कर स्नान यमुना जल में 'जय राधे कृष्णा' बोल रहे॥
यमुना की तरल तरंगों में रवि–कम्पन होने वाला है।
अब निशा–निराशा दूर हुई अरुणोदय होने वाला है॥
इस तरुण तपस्वी ने जाकर कुटिया का द्वार खटखटाया।
'हो कौन?' प्रश्न यह, उत्तर था–'मैं यही समझने हूँ आया॥

हर्षित हो गुरुदेव ने खोले कुटी– कपाट।
बना मिलन गुरु शिष्य का विश्व–मोक्ष का घाट॥

भजन

सच्चे शंकर का दीवाना वन, वन डोले रे।
तज टंकारा रजधानी, है धूलि जगत की छानी,
पर मिला न कोई ज्ञानी! पाखण्डी साधुन संग मिल करके–
सबके हृदय टटोले। वन–वन डोले रे॥ सच्चे शंकर०॥
दिन रात बर्फ में रहना, और भूख की ज्वाल में दहना,
झंझा के झोंके सहना। जंगल जन्तुओं के झुण्ड चहुं दिशि०
शब्द भयंकर बोले। वन–वन डोले रे॥ सच्चे शंकर०॥

कहीं शंका मिटी न मन की, तब गैल गही मधुवन की,
घड़ी अगाई शुभ कर्मन की! गुरु विरजानन्द दे ज्ञान हृदय पट–
बाल जती के खोले। वन–वन डोले रे॥ सच्चे शंकर0॥

X X X

क्या पढ़ा? सभी कुछ बतलाया, आदेश मिला यह सब भूलो।
कौमुदी, काशिका हैं अनार्ष इनकी पद्धति प्रयोग भूलो॥
है कठिन परीक्षा प्रथम वार ही दयानन्द जी जान गये।
कर ग्रन्थों को यमुना–प्रवाह गुरुवर की प्रभुता मान गये॥
जिनकी थी खोज मिले वे गुरु यह जान लिया बनकर दृष्टा।
अन्धी आँखों ने भी देखा भावी युग–नायक, युग–सृष्टा॥
'मम–चित्त ते अनु चित्तं' की वैदिक पुनरावृत्ति यहाँ हुई।
जग में मंगल प्रभात लाने की दिव्य साधना सृजित हुई॥
एक महाभाष्य की प्रति मंगवा चन्दे से गुरुवर देते हैं।
हो भाव–विभोर समीप बुला प्रिय शिष्य को इस विधि कहते हैं॥

पढ़ना तुमको वत्स! यदि होकर के निर्द्वन्द।
भोजन वस्त्र निवास का होवे उचित प्रबन्ध॥

जिस काल दयानन्द पढ़ते थे दुर्भिक्ष देश में छाया था।
छः मास चने खाकर के ही तप का आदर्श बताया था॥
क्षत्रिय–गौरव दुर्गाप्रसाद कुछ काल स्वामि आतिथ्य किया।
ब्राह्मण कुल भूषण अमरलाल जोषी ने आश्रय दान दिया॥
हो गये अमर श्री अमरलाल हैं उनके धन्य पिता माई।
अपने श्रीमुख से ऋषिवर ने जिनकी गुण–गाथा है गाई॥
श्री गोवर्धन सर्राफ नामी तैल की व्यवस्था कर दीनी।
पत्थर वाले हरदेव जी ने दुग्ध की व्यवस्था ले लीनी॥
इस विधि नितान्त निश्चिन्त हुए अब पढ़ने में मन है दीना।
गति मति प्रतिभा को दण्डी जी ने स्वल्प समय में ही चीन्हा॥

दण्डी प्रज्ञाचक्षु थे नेत्र बाहरी बन्द।
जगमग था आलोक उर जीवन मुक्तक छन्द॥

–(शेष अगले अंक में)

किताबी शिक्षा

लेखकः डॉ० गोकुलचन्द्र नारंग

एक बार एक अंग्रेज विद्वान् से उसके मित्र ने प्रश्न किया, कि आपके बच्चे की क्या अवस्था है? उन्होंने कहा, बारह वर्ष की। मित्र ने पूछा तो क्या शिक्षा आरम्भ कर दी गई? उन्होंने कहा वह अपनी शिक्षा समाप्त कर चुका, मित्र महाशय इस उत्तर से बड़े आश्चर्यवत हुये।

वास्तव में उक्त विद्वान् का कथन सत्य है, वर्णमाला आरम्भ कराने के प्रथम ही बच्चे की शिक्षा समाप्त कर देनी चाहिये, बच्चे की शिक्षा पालने से आरम्भ होती है, और तब समाप्त होती है, जब यह वर्णमाला सीखने के योग्य हो जाता है।

किताबी शिक्षा से यदि कोई बच्चा अधूरा रह जाय, तो बात शोचनीय नहीं है, किन्तु यदि वह मनुष्यत्व प्राप्त करने की शिक्षा में अधूरा रह गया, तो उसकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय है, मनुष्यत्व प्राप्त कराने की शिक्षा ही समस्त विद्वता का आधार है, यदि वह पूरी हो गई, तो वह सारी विद्याओं को थोड़े ही प्रयत्न से सीख सकता है, किन्तु यदि यही शिक्षा नहीं है तो उसका प्रमुख विद्वान् हो जाना भी लाभदायक नहीं, इससे न सन्तान की न कुल की और न स्वयं उसकी कुशल रह सकती है, इसी से कहा, कि वर्णमाला के प्रारम्भ कराने के समय तक बालक की शिक्षा समाप्त हो जानी चाहिये।

इस प्रकार के दृष्टान्त कम नहीं मिल सकते, कि अच्छे-2 पढ़े लिखे लोग घमण्डी राग द्वेषी और झगड़ालू होते हैं, बड़े-2 विद्वानों को इस कारण पछतावा करना पड़ता है, कि उन्होंने कोई ऐसा कार्य कर डाला कि जिसके सम्बन्ध में वह सिवाय बचपन के और कभी नहीं सीख सकते थे, यदि पुस्तक की शिक्षा के प्रथम, बालक पूर्ण आरोग्य लाभ और चरित्र गठन कर चुका है तब तो वह (शिक्षा) सोने में सुगन्ध का कार्य करेगी, समाज में एक चमकते हुए रत्न को उत्पन्न करेगी, वरन् यह शिक्षा एक बड़े भयंकर रोग से कम दुखदाई नहीं है, बन्दर के हाथ में तलवार देने से जो फल होता है, केवल पुस्तकी शिक्षा से शिक्षित लोगों से भी उसी फल की आशा रखना चाहिये।

शिक्षा के सम्बन्ध में यह बतलाना समयानुकूल ही होगा, कि बालकों को किस अवस्था से पढ़ाना आरम्भ कराना चाहिये?

जिस प्रकार बाल्य विवाह के सम्बन्ध में हमारे कुछ भोले भाइयों का यह विचार है, कि छोटे-2 बालक उस समय शोभायमान लगते हैं, इसी प्रकार पढ़ाने के लिये भी वह यही विचार करते हैं, कि जितना छोटा बालक हो, उतना ही देखने में अच्छा लगता है।

विवाह के सम्बन्ध में, कोई खास आयु की हद कायम नहीं की जा सकती, चरित्र समझ और आरोग्यता आदि समयानुकूल बात पर विचार करके तत्सम्बन्धी निर्णय व्यक्तिगत पृथक-2 किया जा

सकता है, मेरा मतलब उस प्रश्न से है, कि विवाह छत्तीस वर्ष की अवस्था में हो या पच्चीस की आयु में? इससे न्यून की अवस्था में तो केवल 'नहीं' का ही उत्तर पर्याप्त है, इसी तरह पढ़ाई के समय पर भी हम यही कह सकते हैं, कि यदि बालक आरोग्य है, कुछ समझ रखता है, तो वह कम से कम आठ वर्ष से पाठशाला में जा सकता है, किन्तु यदि किसी कारण से बालक 14–15 वर्ष का हो जाय, और तब तक उसको अक्षराभ्यास न कराया जाय, तो कोई दुःख की बात नहीं, अभिप्राय यह कि जरा देर करने से बच्चे का कुछ नहीं बिगड़ता, किन्तु जरा शीघ्रता करने से हानि का डर है, यदि बालक तीव्र बुद्धि का है, तो उसकी बुद्धि का, दुरुपयोग मत करो, उसे इधर–उधर की ऐसी बातें तोते की तरह मत रटाओ, कि जो आपके मित्रों के मन बहलाव के सिवाय अन्य लाभ न दे सकें, बुद्धिमान होने पर भी निर्बल बच्चा पाठशाला के योग्य नहीं हो सकता।

"जान स्टुआर्ट मिल" जो उन्नीसवीं शताब्दी में एक बड़े विद्वान् हो गये हैं, अपनी पुस्तक "तोजक" में अपने बाल्यकाल का हाल लिखते हुए, बतलाते हैं, कि वह बचपन में अत्यन्त तीव्र बुद्धि वाले बालक थे, उनके पिता ने उसकी इस बुद्धि से लाभ उठाने के लिये, उसकी शारीरिक और मानसिक शक्ति का विचार न कर, इतना पढ़ा डाला, कि विद्वान् लोग भी बच्चे की साइन्स सम्बन्धी बातें सुनकर आश्चर्यवत होते थे, उसने 'लातीनी' और 'यूनानी' भाषायें भी भले प्रकार सीख ली थीं, किन्तु इसके बाद उपरोक्त साहब कहते हैं, कि अब जब मुझे बचपन की याद आती है, तो मेरा चित्त क्रोध और क्षोभ से भर जाता है, कोई यह न समझे कि इस समय जो मैं इतना विद्वान हूं, यह पिताजी की ही करतूत का फल है, हां, यह बात मुझे बारम्बार आश्चर्य देती है, कि मैं अभी तक पागल क्यों नहीं हुआ, क्योंकि पिताजी ने ऐसा ही ढंग डाला था।

'मूजर्ट' भी बचपन में कुशाग्रबुद्धि था। उसके साथ भी यही बर्ताव किया गया था। किन्तु यह कौन कह सकता है, कि यदि वह बचपन में इतना श्रम न करता (कि जितना किया था) तो फूलने फलने के समय मे ही मुरझा जाता?

बचपन शरीर और प्रत्येक मानसिक तत्त्व सम्बन्धी उन्नति का समय होता है। किसी भी शक्ति से अधिक कार्य लेना, मानों उस की उस शक्ति को निर्बल बनाने का प्रयत्न करना है। ऐसे समय में उनके मस्तकों को रात दिन घसीटना कच्ची घोड़ी की कमर तोड़ना है। नींद भोजन और बच्चों के लिये अधिक आवश्यक बातें हैं। हमें ध्यान तो इस बात का होता है, कि प्रकृति माता ने जिन बच्चों को बुद्धि दी है, उनका परिणाम बुरा होता है। तो उनका क्या हाल होगा, कि जिनको बुद्धि नहीं है या कम है?

यूनान देश ने संसार क्षेत्र में सबसे अधिक उन्नति की थी। वहां बच्चों की शारीरिक शक्ति का ध्यान रहता था। वास्तव में शारीरिक शक्ति ही अन्य शक्तियों की खान है। बच्चों को शीघ्र ही पाठशाला भेज देने के सिवाय उनकी शारीरिक उन्नति पर अधिक ध्यान देना उससे अधिक लाभदायक है।

इसके प्रथम कि मैं बच्चों की शारीरिक उन्नति के सम्बन्ध में कुछ कहूं स्कूल की पढ़ाई के

सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूं। शिक्षाप्रणाली सदोष और निर्दोष जैसी भी हो उस पर यहां विचार नहीं किया जा सकता पढ़ाई चाहे जैसी करो किन्तु बच्चों की शक्तियां न नष्ट कराई जायं। बचपन की आयु में यदि हो सके तो स्वयं ही उनको पढ़ाया जाये और कुछ योग्यता हो जाने पर किसी ऊँची कक्षा में दाखिल करा दिया जाये। कारण यह है कि छोटी कक्षाओं को यहां कम वेतन वाले अध्यापक पढ़ाते हैं, यूरोप की भांति अधिक वेतन वाले नहीं। वह बेचारे यह भी नहीं जानते, कि बच्चों को किस प्रकार बैठना चाहिये। बस वह तो जरा-2 सी बात में बच्चों को पीट-2 छड़ीप्रूफ बनाना जानते हैं। इस प्रकार कई बुद्धिमान बालक निर्बुद्धि और विद्याप्रेमी विद्याद्रोही हो जाते हैं बच्चे से और इस प्रकार की मार से कोई भी सम्बन्ध न होना चाहिये। तोते की तरह रात दिन रटा-2 बच्चे को दर्जे में प्रथम और पारितोषिक प्राप्त करने का बढ़ावा नहीं देना चाहिये। यदि वह साधारणतः ही प्रथम नहीं है तो चेष्टा की कोई आवश्यकता नहीं। बच्चों को जीवन के प्रश्न सुलझाने के योग्य बनाना चाहिये। पुस्तक के हिसाब से उसका सम्बन्ध थोड़े ही दिनों तक रहेगा। प्रायः उनको जल्दी ही मद मदर्से में बिठाकर उनके मस्तकों में गंभीर विषय ढूंढ़ने का उद्योग किया जाता है। फल यह होता है कि मस्तक की उन्नति और बुद्धि का स्फूर्ति होना थकावट के कारण बन्द हो जाता है और फिर प्राकृतिक उन्नति का कोई समय ही नहीं रहता। ग्यारह बारह वर्ष के बच्चों को स्कूल में साइन्स पढ़ते देखा जाता है, यह बड़े दुःख की बात है। मेरी राय में उच्च शिक्षा उसी समय देनी चाहिये कि जिस समय बच्चा घर पर साधारण शिक्षा प्राप्त करता हुआ शारीरिक, मानसिक और मनुष्यत्व की शिक्षा पा इस योग्य हो जावे कि वह ऊँचे विषय समझने लगे। उस समय उसकी इच्छा पढ़ने में बलवती और बुद्धि विषय समझने के योग्य हो जाती है।

जिन बालकों का दिल पढ़ने से घबड़ावे अथवा उकतावे तो उनको बराबर पढ़ने के लिये न कहा जाय। उनकी सुस्ती ही यह बात बतलाती है, कि वह कमजोर हैं फिर अधिक निर्बल बनाने की क्या आवश्यकता?

यदि बालक का मस्तक ही इस प्रकार का नहीं है कि वह विद्या लाभ कर सके, तो उस पर जुल्म करने की मूर्खता न करनी चाहिये, सम्भव है कि वह बी. ए. न होकर एक प्रसिद्ध वीर बने। एक वीर बी. ए. से कभी कम नहीं है। जो हो प्रथम यह देखना चाहिये कि बालक का चित्त किस तरफ लगता है और तदनुसार कर्म करना चाहिये। प्रकृति सबको क्लर्क नहीं बनाना चाहती, उसके अन्य कार्यों में भी मनुष्यों की आवश्यकता रहती है। इस कारण यह बात दुःख मानने की नहीं कि बालक हमारा पढ़ न सका, किन्तु यह याद रखिये कि नैतिक शिक्षा और किताबी शिक्षा से अधिक सम्बन्ध नहीं है। नैतिक शिक्षा वाला मूर्ख भी पुस्तकी शिक्षा के धुरन्धरों से अधिक चरित्रशील होना असम्भव नहीं है।

बालकों के लिये सबसे अधिक शारीरिक शक्ति की आवश्यकता है इसी शक्ति को आधार बना बालक तरह-2 की उन्नति कर सकते हैं। उनकी शान्ति, सुख, विद्या, ज्ञान, चरित्र आदि समस्त उपयोगी विषयों की दाता यही शारीरिक शक्ति होती है।

शारीरिक शक्ति प्राप्त करने के लिये, व्यायाम अवश्य करना चाहिये। दंड करना, तैरना, नाव खेना, वृक्षों पर चढ़ना, लकड़ी काटना व चीरना, कृषि कार्य आदि-2 ऐसे कार्य लाभदायक हैं। किन्तु बालकों से भारी बोझ कभी न उठवाना चाहिये। जिमनास्टक, घोड़े की सवारी और फरी गदका आदि भी लाभदायक और कार्य में आने वाली बातें हैं। बालकों को अपने कमरे को स्वयं साफ करना चाहिये, अपने वस्त्र आप बिछावें और सम्भालें। यह बातें इस कारण दूषित न समझी जानी चाहियें, कि वह अमीर बात का बेटा है, सर्वदा धन बना ही रहेगा, इसका कोई प्रमाण नहीं और फिर धन होने से शारीरिक शक्ति की आवश्यकता नहीं, यह भी तुच्छ विचार है।

दौड़ना, क्रिक्रेट और टेनिस खेलना भी लाभदायक है। इनसे शरीर लचकदार बनता है, हाथ-पैरों में शीघ्रता और नेत्रों में ज्योति बढ़ती है। बुद्धि प्रखर और चित्त प्रसन्न रहता है। नट और बाजीगरों की तरह अपने शरीरों को कसना चाहिये, सात वर्ष के बालकों को भी जीना उतरना-चढ़ना, सीधा रास्ता चलना और घोड़े पर सरलता पूर्वक चढ़ना आदि सिखला देना चाहिये। इससे वादी का प्रकोप नहीं हो सकता, शरीर सुन्दर और लचकदार बनेगा, मोटा अथवा भद्दा नहीं।

यदि आप चाहते हैं कि आपका पुत्र अपने जीवन में जो कार्य करें उसमें वह कृतकार्य हो जाया करे, तो अत्यावश्यक है, कि आप उसको मस्तिष्क शिक्षा के साथ-2 ही, विवेचन शिक्षा भी दें। वैसे तो सभी देखते, सुनते और सूंघते हैं, परन्तु सब एक ही प्रकार से वैसा नहीं करते। विवेचन शक्ति वाला बुद्धिमान मनुष्य जो देखता है, वह खूब पढ़े लिखे को भी दृष्टि नहीं पड़ता। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो संसार के समस्त आविष्कार इसी विवेचन शक्ति द्वारा विदित किये गये हैं। संसार में प्रथम ही से विद्युत भी थी, और चुम्बक भी था। बात यह है कि तत्ववेत्ताओं की दृष्टि आंतरिक सूरत पर पड़ती है और सर्वसाधारण वाह्य सूरत पर लाखों माली व मनुष्य सेव को पृथ्वी पर गिरते देखते रहे, पर उनकी दृष्टि कुछ भी न देख सकी, उसे न्यूटन ही ने देखा। सिवाय देखने के और बात ही क्या थी? लाखों मनुष्य पृथ्वी को देखते हैं, और उनको वह स्थिर दृष्टि पड़ती है, पर इसी देखने से गैलीलियो ने उसे कुम्हार के चाक की भांति घूमता हुआ देखा।

अभिप्राय यह कि जब तक हम दृष्टि शक्ति के साथ, विचार शक्ति को नहीं जोड़ते, तब तक हम ऊपर ही ऊपर देखते रहते हैं, और कई उल्टी बातें सीधी समझने लगते हैं।

निःसन्देह विवेचन (विवेक) शक्ति का सम्बन्ध दृष्टि से बहुत कुछ है, किन्तु अंधों की जीवनियों से पता चलता है, कि उन्होंने विवेक शक्ति के साथ श्रवण शक्ति का सम्बन्ध लगा कर काम चलाया है।

बालक की विवेचन शक्ति को विकसित करने के लिये, उनको नित्यप्रति की वस्तुओं की विवेचना कराई जानी चाहिये।

बालक को प्रकृति के साथ, विवेचन शक्ति को बढ़ाना चाहिये। यदि बालक छाया देखकर समय बोली सुनकर जानवर का नाम और नेत्र बन्द कर सूंघने से, फूल बतला सकता है, तो समझ लीजिये, कि उसकी विवेचन शक्ति उन्नति कर रही है।

-(शेष अगले अंक में)

भाई बालमुकुन्द

इनका जन्म चकवाल के पास एक गांव (जिला झेलम) पंजाब में हुआ था। पहले तो उधर ही शिक्षा पाते रहे, बाद में लाहौर डी० ए० वी० कालेज में आ गये। बी० ए० पास करने के बाद आपने देश सेवा का व्रत धारण कर लिया। और आर्य नेता लाला लाजपतराय के तत्कालीन अछूतोद्धार आन्दोलन में काम करने लगे। दूर पर्वतों में, जहाँ पर कि अन्धकार का गढ़ है, जाकर अनेक असुविधाओं में भी अपना काम बहुत उत्साह तथा साहस से करते रहे। उनके सहाकरी उनकी संलग्नता और तत्परता की तारीफ आज भी मुक्तकण्ठ से करते हैं। उधर पंजाब में विप्लवदल का संगठन कार्य 1908 में सरदार अजीतसिंह और सूफी अम्बाप्रसाद के 1907 ई० वाले आन्दोलन के बाद से शुरू हो गया था। 1909 में बंगाल से आये एक क्रान्तिकारी उनके पास पहुँचे। तब एक संगठित दल कायम करने का उद्योग होने लगा। उधर 1908 में श्री लाला हरदयाल जी एम० ए० अपनी शिक्षा बीच में ही छोड़ इंगलैण्ड से लौट आये। उन्होंने एक दम विप्लव का प्रचार शुरू कर दिया था। कुछ ही दिनों में अनेक आदर्शवादी युवक उनके अनुयायी हो गये। इसी बीच में उन्हें भारत छोड़कर यूरोप जाना पड़ा।

कुछ ही दिनों के बाद सूफी अम्बाप्रसाद और सरदार अजीतसिंह भी ईरान जाने को बाधित हुए। तब यह युवक दिल्ली के प्राणम्य शहीद मास्टर अमीरचन्द जी से राजनैतिक शिक्षा पाते रहे। इधर 1910 में श्रीरामबिहारी बोस देहरादून में जंगलात के विभाग में नौकरी करने लगे थे और बंगाल की ओर से बंगाल के बाहर समस्त उत्तर भारत में विप्लवदल संगठित करने का भार आप पर ही पड़ा था। आपने लाहौर में सभी क्रान्तिकारी युवकों का पुनः संगठन किया। एक कार्यकारिणी समिति नियुक्त की गई। उसमें लाहौर के दल का भार श्री बालमुकुन्द पर सौंपा गया था। इस दल की ओर से 'लिबर्टी' नामक क्रान्तिकारी पर्चे बांटे गये थे।

1912 ई० में सर माइकोल ओडायर ने पंजाब की गवर्नरी की बागडोर अपने हाथ में ली। उसी समय उन्हें बताया गया था कि पंजाब में एक ज्वालामुखी तैयार हो रहा है, जो किसी वक्त पर छूट सकता है। वह उस के लिये तैयार होकर शासन का भार ले ही रहे थे कि दिल्ली में लार्ड हार्डिंज तत्कालीन वायसराय के जुलूस पर चाँदनी चौक में बम फेंका गया।

सन् 1910 ई० में इंगलैंड के बादशाह एडवर्ड सप्तम का देहान्त होने से उनके ज्येष्ठ पुत्र जार्ज पंचम वहां की गद्दी पर बैठे। बंगभंग और उसके कारण होने वाले राजनैतिक आन्दोलन से इस समय भारत सरकार और ब्रिटिश सरकार दोनों ही घबरा रही थीं। वह दोनों बंगाल को एक करना चाहते तो अवश्य थे, किन्तु अपनी शान बचाने के लिये किसी उपयुक्त अवसर की तलाश में थे। जार्ज पंचम के

इंगलैंड की गद्दी पर बैठने से उन्होंने सोचा कि सम्राट् का राजतिलक भारत में भी देहली दरबार में किया जाये और उस अवसर पर समस्त भारत में राजभक्ति का प्रचार किया जाये। यह भी निश्चय किया गया कि इसी अवसर पर सम्राट् के मुख से दोनों बंगाल को एक करने की घोषणा कराई जाये, जिससे इस कार्य को सम्राट् की उदारता समझकर उनके विषय में जनता में राजभक्ति का संचार हो। इस योजना के अनुसार सम्राट् जार्ज पंचम को भारत लाकर 12 दिसम्बर सन् 1911 को देहली में ऐसा भारी दरबार किया गया कि उसकी धूम देश-देशान्तरों में छा गई। इस अवसर पर सम्राट् ने घोषणा की-"अब से भारत की राजधानी कलकत्ते के स्थान पर देहली को बनाक़र पाण्डवकालीन प्राचीन इन्द्रप्रस्थ के वैभव का फिर उद्धार किया जाता है। बंगाल की प्रजा के आन्तरिक असन्तोष को ध्यान में रखते हुए पूर्वीय और पश्चिमी बंगाल को मिलाकर फिर लेफ्टिनेंट गवर्नर के आधीन पृथक प्रान्त बनाया जाता है। आसाम को चीफ कमिश्नर के आधीन प्रथक प्रान्त बनाया जाता है। प्राचीन मगध राजधानी के वैभव का पुनरुद्धार करके पटने को एक स्वतन्त्र प्रान्त की राजधानी बनाया जाता है। इस प्रान्त में बिहार, छोटा नागपुर और उड़ीसा के जिले होंगे। इस प्रान्त का नाम बिहार-उड़ीसा होगा। बिहार-उड़ीसा प्रान्त को भी एक लेफ्टिनेंट गवर्नर के आधीन किया जाता है।"

यह तय किया गया कि वायसराय लार्ड हार्डिंज 23 दिसम्बर को राजधानी में पहली पहल अत्यन्त समारोहपूर्वक देहली में प्रवेश करें। किन्तु जिस समय उनकी सवारी देहली के चाँदनी चौक में आई तो अज्ञात दिशा की ओर से एक भयानक बम उनके ऊपर फेंका गया, किन्तु निशाना ठीक नहीं बैठा। बम वायसराय के न लगकर उनके पीछे बैठे हुए उनके अंगरक्षक के लगा, जिससे वह घटनास्थल पर ही मर गया। वायसराय के भी सिर के पीछे के भाग में कुछ चोट लगी, जिससे वह उसी समय मूर्छित हो गये। पुलिस ने उसी समय सारे चाँदनी चौक को घेर लिया। दुकानों की छतों पर दर्शक स्त्री पुरुषों की बड़ी भीड़ थी। सबकी सावधानी से जांच की गई। किन्तु बम फेंकने वाले की परछाईं तक न जाना जा सका। इसके पांच मास बाद मई 1913 में लाहौर के लारेन्स गार्डन में सभी सिविलियन पदाधिकारी एकत्रित हुए थे। उन सभी को उड़ा देने के लिये वहां एक बम रखा गया। परन्तु उस बम के फटने से एक हिन्दुस्तानी चपरासी के सिवा और कोई न मर सका। सरकार लाख सर पटक कर बैठी रही, किन्तु दुर्घटना का इस समय भी कुछ कारण न मिला।

इधर राजा बाजार कलकत्ता की तलाशी में श्री अवधबिहारी का नाम मिल गया। उनकी तलाशी पर दीनानाथ का पता मिला। दीनानाथ पकड़ा गया। जोधपुर से भाई बालमुकुन्द और एम0 ए0 के विद्यार्थी श्री बलराज इत्यादि अनेक लोग पकड़े गये। दीनानाथ के वक्तव्य के अनुसार भाई बालमुकुन्द जी के पास उस समय भी दो बम मौजूद थे। उन्हीं की तलाश में उनके गांव वाले घर की तलाशी में दो-दो गज तक गहरी जमीन खोद डाली गई थी। सारी छतें उधेड़ डाली गईं, परन्तु वहाँ कुछ न मिल सका।

अभियोग चला। वे दिन बड़े विचित्र थे। उन दिनों किसी क्रान्तिकारी से सहानुभूति प्रदर्शित

करना आग से खिलवाड़ करना था। बड़े–बड़े नेताओं ने अभियुक्त के सम्बन्धियों को घर पर परामर्श लेने आते देखकर धक्के देकर बाहर निकाल दिया था। ऐसी दशा में कौन किसकी सहायता करता? भाई परमानन्द जी ने ही भाई बालमुकुन्द जी के अभियोग में सब प्रबन्ध किया, परन्तु उस मतवाले सैनिक को यह सब नाटकमात्र जान पड़ता था। उन्होंने अन्त में मृत्युदण्ड सुनने पर सहर्ष केवल इतना ही कहा था–"आज मुझे अत्यन्त आनन्द हो रहा है, क्योंकि इसी नगर में जहां कि हमारे पूर्व पुरुष श्री भाई मतिराम जी ने स्वतन्त्रता के लिये प्राण दिये थे–वहीं पर आज मैं भी–माँ के चरणों पर आत्म–समर्पण कर रहा हूँ।" आखिर उन्हें 1915 के प्रारम्भ में फांसी दे दी गई। घर की हालत अजीब थी। बड़ी मुश्किल से कुछ रुपया पैसा जुटाकर भाई परमानन्द जी ने प्रिंवी कौन्सिल के लिये एक वकील को तार दिया था। एक महाशय ने पूछा–"भाई जी! बालमुकुन्द जी के बारे में क्या हो रहा है।" आपने उत्तर दिया–"प्रिवी कौन्सिल में अपील करने की चेष्टा कर रहे हैं।" फिर पूछा गया–"और स्वयं आपका क्या हो रहा है?" उत्तर दिया–"खुद भी तैयार बैठे हैं।" इंगलैंड से अपील खारिज होने का तार पहुँचते–पहुँचते भाई परमानन्द जी भी धर लिये गये। तब तक 1915 के विराट् विप्लव का सब प्रयास निष्फल हो चुका था। उसी के फलस्वरूप उनकी गिरफ्तारी हुई थी।

इधर भाई बालमुकुन्द जी को फांसी हो गई। उस दिन कहते हैं, उनके आनन्द की सीमा न रही थी। सिपाहियों से पंजा छुड़ाकर फांसी के तख्ते पर जा खड़े हुए थे। ओह, ऐसा साहस इन कर्मयोगियों के अतिरिक्त और कहाँ मिलेगा? मृत्यु के प्रति इतनी अपेक्षा दिखाने का साधारण दुनियाँदार लोग भला क्यों कर साहस कर सकते हैं?

इनके सुन्दर बलिदान को इनकी धर्मपत्नी श्रीमती रामरखी ने सती होकर और भी चार चाँद लगा दिये। बात यह थी कि वे उनसे बहुत प्यार करती थीं। विवाह हुए भी अभी कुछ दिन ही हुए थे। वे उनसे जेल में मिलने गईं, पूछा–"भोजन कैसा मिलता है?" उत्तर में जेल की बालू मिली रोटी दिखाई गई। घर आकर वैसा ही भोजन तैयार कर खाने लगीं। फिर मिलीं। पूछा–'सोते कहाँ पर हैं?" उत्तर मिला–"इस ग्रीष्म ऋतु में भी अन्धकारमय कोठरी में दो कम्बल ओढ़ कर।" घर आकर वैसा ही रहना शुरू कर दिया। एक दिन बाहर से रोने–धोने का शब्द सुनकर उन्होंने सब कुछ समझ लिया। उठीं। स्नान किया, वस्त्राभूषण पहनकर श्रृंगार किया और अपने प्रियतम से मिलने के लिये तैयार होकर घर के अन्दर एक चबूतरे पर बैठ गईं। फिर वे नहीं उठीं। दूर जहाँ तक स्थूल दृष्टि देख सकती हैं, जहां तक आतातायी शासकों का कानून विधान पहुँच सकता है उससे बहुत दूर–उस पार, जहाँ पर जेल नहीं, फांसी नहीं, विप्लव नहीं, पराधीनता भी नहीं, केवल प्रेम ही प्रेम है। उसी लोक में वे अपने चिर प्रियतम श्री बालमुकुन्द जी से अनन्तकाल तक सहवास का आनन्द उठाने के लिये चली गईं।

ब्रह्मचर्य से दीर्घायु

लेखकः लक्ष्मणनारायण गर्दे

"दीर्घायुब्रर्ह्मचर्यया।" (सूक्ति)

ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन करने से मनुष्य को दीर्घायु प्राप्त होती है।

यो विभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं,
स देवेषु कृणुते दीर्घ मायुः,
स मानुषेषु कृणुते दीर्घमायुः। -(यजुर्वेद)

जो अपने शरीर में अनुपम वीर्य को रक्षित रखता है, वह विद्वानों में दीर्घायु प्राप्त करता है-वह साधारण लोगों में भी दीर्घजीवी होता है।

अपने में वीर्य भरने वाला पुरुष, ज्ञानी हो या अल्पज्ञ, उसे दोनों अवस्थाओं में दीर्घजीवन प्राप्त होता है।

न तद्रक्षांसि पिशाचाश्चरन्ति,
देवाना मोजः प्रथमजं होतत्। -(यजुर्वेद)

जो पुरुष वीर्य की रक्षा करता है। उसे राक्षस और पिशाच नहीं सताते। यह वीर्य विद्वान् लोगों का आत्मतेज या दिव्य गुणों का सारांश है। यह उनमें प्रथमतः उत्पन्न होता है।

'राक्षस' नाम है पापी का और 'पिशाच' दुष्ट को कहते हैं। एक ब्रह्मचारी पुरुष को पापी और दुष्ट का कुछ भी भय नहीं रहता। वे इसके प्रभाव से स्वयं भयभीत रहते हैं और किसी प्रकार का कष्ट नहीं दे सकते। वीर्य की रक्षा करने वाले से, पापी और दुष्ट का, उसे नष्ट करने में, कुछ भी वश नहीं चलता।

यह बात सभी लोग जानते हैं कि 'राक्षस' और 'पिशाच' के लगने से मनुष्य का आयुर्बल क्षीण हो जाता है। इसीलिये लोग उनसे बचने का उद्योग करते हैं। पापी और दुष्ट पुरुष भी मनुष्य के आचरण को भ्रष्ट कर देते हैं। इनके सम्पर्क से आयुर्बल का ह्रास होता है। जो लोग सच्चे वीर्य-रक्षक हैं, वे इनसे बचे रहते हैं।

व्यभिचार से मनुष्य का आयुर्बल क्षीण हो जाता है। प्राचीन अथवा अर्वाचीन समय में एक भी व्यभिचारी पुरुष दीर्घजीवी होता नहीं देखा गया। इतिहास में दीर्घजीवी पुरुषों के जीवन-चरित के पढ़ने से यह बात पूर्ण रूप से सिद्ध हो चुकी है कि ब्रह्मचर्य के पालन से ही उनको दीर्घजीवन प्राप्त हुआ था। दीर्घजीवन का मूल कारण वीर्य-रक्षण है। जिसका जितना ही पुष्ट वीर्य है, वह उतना ही अधिक दिनों तक जीवित रह सकता है।

ब्रह्मचर्य में वीर्य रक्षा प्रधान है। वीर्य के रक्षित होने पर ओज की वृद्धि होती है। ओज की बढ़ती

के ही भीतर जीवनीशक्ति है। इसी अद्भुत शक्ति से मनुष्य का शरीर सुदृढ़ और स्वस्थ रहता है। शरीर की सुदृढ़ता और स्वस्थता के ही ऊपर दीर्घायु अवलम्बित है।

कहने का अभिप्राय यह है कि ब्रह्मचर्य के पालन से ही दीर्घजीवन प्राप्त हो सकता है। जो जितना दीर्घजीवी होना चाहता है, वह उतना ही वीर्य की रक्षा करे। वीर्य का व्यय ही जीवनीशक्ति का प्रधान नाशक है।

कुछ लोगों का कहना है कि सतयुग, त्रेता और द्वापर में मनुष्य का आयुर्बल विशेष होता था, सो अब कलियुग के कारण कम हो गया है। इस बात को हम मानते हैं, पर इसके साथ यह भी था कि अन्य युगों में ब्रह्मचर्य का पालन भी विशेष रूप से किया जाता था, जो दिन पर दिन घटता ही गया और कलियुग में नाम ही नाम रह गया। यदि इस समय भी ब्रह्मचर्य का विधिवत पालन हो, तो अब भी दीर्घजीवी पुरुष हो सकते हैं। यह कोई विचित्र बात नहीं! अब हम कुछ दीर्घजीवी पुरुषों के नाम और उनकी अवस्था की तालिका नीचे लिखते हैं। इस तालिका से पाठक स्वयं जान जायेंगे कि ये पुरुष किस प्रकार के सत्पुरुष, धर्मनिष्ठ और सदाचारी थे–

भीष्म पितामह 170, महर्षि व्यास 157, वसुदेव 155, भगवान बुद्ध 140, धृतराष्ट्र 135, श्रीकृष्ण 126, रामानन्दगिरि 125, महात्मा कबीर 120, युगराज लोहकार 115, महाकवि भूषण 102, स्वामी सच्चिदानन्द 100, महाकवि मतिराम 99, गोस्वामी तुलसीदास 91, यतीन्द्रनाथ ठाकुर 85 और भक्तवर सूरदास 80 वर्षों तक जीवित रहे।

80 से लेकर 100 वर्ष तक की अवस्था के इस समय भी कई पुण्यात्मा विद्यमान हैं। लेखक ने स्वयं कई ऐसे सौ वर्षों के पुरुषों को देखा है, जिनकी नेत्र-ज्योति, शारीरिक स्थिति और स्मरण-शक्ति उत्तम, दृढ़ तथा तीव्र थी। उनसे तथा उनके जानने वालों से पूछने पर यह बात जानी गई कि वे बाल-ब्रह्मचारी या नियमपूर्वक वीर्य-रक्षक थे।

श्रीमद्भागवत के अनुसार कलि-काल में भी मनुष्य के आयुर्बल का परिमाण 120 वर्षों का है। इससे पूर्व मरने वाले अकाल मृत्यु से मरते हैं। ब्रह्मचर्य-व्रत से हीन होने वाले ही लोग इन अकाल मृत्यु के ग्रास होते हैं। वीर्य का विधिवत् रक्षा करने वाले पुरुष ही अपने आयुर्बल का पूर्ण उपभोग कर सकता है।

अथर्ववेद में 101 प्रकार की मृत्यु (शरीर से आत्मा के पृथक् होने की आवश्यकतायें) मानी गई हैं। उनमें से 100 तो अकाल मृत्यु हैं। पूर्ण मृत्यु उनमें से 1 ही है। इस अन्तिम मृत्यु से मरने वाला पुरुष ही भाग्यवान है और उसी की सद्गति होती है। जो लोग अकाल मृत्यु से मरते हैं, वे मोक्ष के अधिकारी नहीं होते। इसलिये जो लोग अकाल मृत्यु से बचना चाहते हैं, उन्हें ब्रह्मचर्य का अवश्य पालन करना चाहिये।

❋❋❋

"भारतवर्ष की नींव गाय और गुरुकुलों पर टिकी है"

लेखकः खुशहालचन्द्र आर्य, कोलकाता

किसी भी व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्व को तीन गुणों की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। पहला बल दूसरा बुद्धि और तीसरा चरित्र। गाय और गुरुकुल इन तीनों गुणों को बढ़ाने वाले होते हैं। इसीलिए प्राचीन भारत में गऊओं का पालन और गुरुकुल शिक्षा पद्धति ही अधिक चलती थी तभी भारत "विश्वगुरु" तथा "सोने की चिड़िया" कहलाता था। अंग्रेजों के आने से पहले तक भी गाय का पालन तथा गुरुकुलों की शिक्षा काफी मात्रा में थी। तभी अंग्रेजों ने समझ लिया था कि यदि हमको भारत पर शासन करना है तो गो-हत्या चालू करनी पड़ेगी और गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति समाप्त करनी पड़ेगी। इसीलिए उन्होंने गाय की हत्या के लिए हिन्दू-मुसलमानों में फूट डाली और गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति को समाप्त करने के लिए इंग्लिश स्कूलों का प्रचलन किया। गुरुकुलों के महत्व को हटाकर इंग्लिश मीडियम के स्कूलों में पढ़ाना आरम्भ कर दिया। इसी से गो-हत्या आरम्भ हो गई और गुरुकुलों की संख्या कम होने लगी।

हमें अफसोस है कि भारत को स्वतन्त्र हुए सत्तर साल हो गये लेकिन कांग्रेस सरकार ने इन दोनों की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। अब देश का सौभाग्य उदय हुआ है, भारत का शासन बी.जे.पी. के हाथों में आ गया है और देश का प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जैसा त्यागी, तपस्वी, ईमानदार व परिश्रमी व्यक्ति जो हिन्दुत्व की भावना से ओत-प्रोत है साथ ही पूज्य योगाचार्य स्वामी रामदेव जी महाराज जो गुरुकुलों में पढ़े हुए हैं और महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त हैं। वे मोदी जी के मार्गदर्शक हैं। अब हमें पूरी उम्मीद है कि इन दोनों की तरफ सरकार पूरा ध्यान देगी और देश पुनः उन्नत व समृद्धशाली बनेगा।

अब प्रश्न उठता है कि गाय और गुरुकुलों से देश उन्नत और समृद्धिशाली कैसे बनेगा? इसका हम ऊपर लिख चुके हैं कि देश को उन्नत और समृद्धिशाली बनाने के लिए तीन गुण बल, बुद्धि और चरित्र की आवश्यकता होती है। यह तीनों गुण गाय और गुरुकुलों में विद्यमान हैं। गाय केवल घास खाकर, उसके बदले में दूध, घी, दही, मक्खन व छाछ आदि पौष्टिक व उपयोगी चीज देती है। जिनके खाने से शरीर बलिष्ठ तथा हृष्ट-पुष्ट के साथ-साथ सुन्दर व आकर्षक भी बनता है। गाय का दूध पीने से बुद्धि पवित्र व सात्विक बनती है साथ ही बुद्धि की वृद्धि होती है जिससे मनुष्य के विचार सात्विक हाने से वह चरित्रवान भी बनता है। इसी प्रकार गुरुकुलों में विद्यार्थी संस्कृत और वेद पढ़ने से उसकी बुद्धि निर्मल व सात्विक बनती है। पच्चीस वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचारी रहने से विद्यार्थी बलिष्ठ व चरित्रवान बनता है। बुद्धि पवित्र और सात्विक होने से उसमें मानवता के सभी गुण जैसे दया, करुणा, सुहृदयता, परोपकारिता, निष्पक्षता, सच्चाई, ईमानदारी, साहस आदि गुण स्वमेव ही आ जाते हैं और वह एक पूर्ण मानव बन जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मानवीय गुण आने से गाय और गुरुकुल दो ही माध्यम हैं। इनके ऊपर

हम और अधिक विशेष चर्चा करते हैं–

गायः– गाय मनुष्य की सर्वोत्तम सहयोगी है। मानव को पूर्ण मानव बनाने में गाय का सबसे अधिक योगदान होता है। वैसे तो ईश्वर ने सृष्टि के आदि में प्रकृति की सब चीजें तैयार करके यानि पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, नदी, नाले, पहाड़, वन, पशु–पक्षी, कीट–पतंग, सब मनुष्यों के लिए बनाये। इन सभी का मनुष्य किसी का प्रयोग, किसी का सहयोग, किसी उपयोग करता है। जैसे गाय, भैंस, बकरी, दूध के लिए, घोड़ा, हाथी, ऊँट सवारी के लिए, सोना, चांदी, लोहा, लकड़ी प्रयोग के लिए और अन्न, फल, वनस्पति आदि उपयोग के लिए बनाये हैं। हमें इसी प्रकार प्रयोग, सहयोग व उपयोग करना चाहिए, इसी में मानव की मानवता है।

ईश्वर ने जीव की दो किस्म की योनियां बनाई हैं। एक भोगयोनि और एक कर्मयोनि। पशु–पक्षी, कीट–पतंग आदि केवल भोगयोनि है। इसमें जीव जो कर्म करता है उसको स्वभाविक कर्म कहते हैं। जैसे–खाना–पीना, सोना–जागना, उठना–बैठना तथा सन्तान पैदा करना आदि। इन कर्मों का जीव को कोई फल नहीं मिलता। परन्तु मनुष्य भोगयोनि के साथ–साथ कर्म योनि भी है। साधारण भोग जैसे–पशु–पक्षी करते हैं वैसे ही मनुष्य भी भोगयोनि होने से साधारण कर्म करता है उसका फल मनुष्य को भी नहीं मिलता। मनुष्य कर्मयोनि भी है, इसलिए उसको उसके लिये अच्छे व शुभ कर्मों का फल सुख के रूप में और बुरे व अशुभ कर्मों का फल उसे दुःख के रूप में ईश्वर अपनी न्याय–व्यवस्था के अनुसार देता है। मनुष्य जो कर्म करता है, उन्हें नैमित्तिक कर्म कहते हैं। नैमित्तिक कर्म वह होते हैं जो सीखने से सीख जाये। माता–पिता बच्चे को चलना सिखाता है और बोलना सिखाता है तभी बच्चा चलना व बोलना सीखता है। पशु–पक्षी के बच्चे स्वयं ही चलना, बोलना सीख लेते हैं। उनके लिए यह कर्म स्वाभाविक हैं और मनुष्य के लिए नैमित्तिक हैं। इसीलिए सृष्टि के आरम्भ में जब माता–पिता व गुरु कोई नहीं थे तब ईश्वर ही सबका माता–पिता व गुरु था इसलिए ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों को क्या काम करने चाहिए और क्या काम नहीं करने चाहिए, इसको जानने के लिए चार ऋषियों जिनके नाम अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा थे, उनके मुख से चार वेद जिनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद हैं क्रमशः उच्चारित करवाये जिनको पढ़कर और उनके अनुसार आचरण करके अच्छे कर्मों को करें और बुरे कर्मों को छोड़ें जिससे मनुष्य अपने अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सके जिसके लिए ईश्वर जीव को उसके कर्मोनुसार मनुष्य योनि में भेजता है। इसलिए मनुष्य का कर्तव्य हो जाता है कि वह मनुष्यता के गुण, परोपकार, दया, करुणा, सहृदयता, साहस, निष्पक्षता, मृदुभाषिता, अहिंसा आदि गुणों को अपनावे और अवगुण, काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, लालच, झूठ, बेईमानी, हिंसा आदि को छोड़कर अपना उत्तम व श्रेष्ठ जीवन बना कर मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी बने। मनुष्य योनि ही कर्मयोनि होने के कारण मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है, इसीलिए मनुष्य योनि को ही मोक्ष का द्वार माना गया है। अन्य योनियां भोग योनियां होने से वे केवल भोग, भोगकर ही अगली योनि में चली जाती हैं। फिर जीव सब भोगों को अनेक योनियों में

भोगकर फिर मनुष्य योनि में आता है और अच्छे कर्मों द्वारा मोक्ष को प्राप्त होता है। सब अच्छे कर्मों को करना और सब बुरे कर्मों को छोड़ना हमें वेद जो ईश्वर की वाणी है, सीखता है। इसके लिए वेद में एक मन्त्र आया है।

ओउम् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव।।

अर्थ– हे सकल जगत के उत्पत्ति कर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन, और दु:खों को दूर कीजिए और जो कल्याण कारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं, वह सब हमको प्राप्त कीजिए।

इन सब शुभ कर्मों का करना और अशुभ कर्मों को छोड़ना, विशेषत: हमें गोपालन और गुरुकुल शिक्षा पद्धति ही सिखलाती है। गो के दूध, घी, दही, छाछ, मलाई से हमारी बुद्धि पवित्र और सात्विक बनती है जिससे हम बुरे कर्मों को छोड़ते हैं और अच्छे कर्मों को करते हैं। इसी प्रकार गुरुकुलों में बच्चे पच्चीस वर्षों तक ब्रह्मचारी रहकर वेदों को पढ़कर अपने जीवन को पवित्र के साथ–साथ बलवान व पुष्ट भी बनाते हैं इसलिए इन दोनों की ओर मनुष्य को अधिक ध्यान देना चाहिए। गायों के सम्बन्ध में भी वेदों में मन्त्र आये हैं–

गावो विश्वस्य मातर:– अर्थ– गाय विश्व की माता है।

गावो यत्र तत: सुखम:– अर्थ– जहाँ गाय है वहीं सुख है।

वेदों ने भी गाय को माता कहा है। माता तो बच्चे को केवल तीन या चार वर्ष ही दूध पिलाती है। परन्तु गाय तो उम्र भर मनुष्यों को दूध पिलाती है। इसलिए गाय को माता मानना उचित है। साथ ही गाय मनुष्य पर अनेक उपकार करती है। वह अपने गोबर, गोमूत्र से उत्तम श्रेणी की खाद बनती है जिससे जमीन की उर्वरा शक्ति बढ़ती है। गाय के गोबर, गोमूत्र व दूध, घी, दही से अनेकों किस्म की दवाईयां बनती हैं जो मनुष्य के लिए बहुत लाभदायक हैं। यहाँ तक कि गो–मूत्र से तो कैन्सर तक की दवाईयां बनती हैं जो काफी लाभदायक सिद्ध हो रही हैं। गाय के बछड़े हल जोतते हैं और गाड़ी खींचते हैं। इस प्रकार गाय मनुष्य के लिए बड़ी लाभदायक है। भारत एक कृषि प्रधान देश है और गाय का कृषि से विशेष सम्बन्ध है। इसलिए गाय भारत के लिए विशेष लाभदायक है। अत: भारत की उन्नति व समृद्धि के लिए गुरुकुलों को अधिक से अधिक खोलकर वेद प्रचार करना और गोशालाओं को अधिक से अधिक खोलकर गो–रक्षा करना आज की सबसे अधिक आवश्यकता है। कारण इन्हीं दो कार्यों पर भारत की उन्नति व समृद्धि टिकी हुई है। इसलिए हमें इन दोनों कामों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। ❁❁❁

पृष्ठ संख्या 15 का शेष–

दिल्लगी बहुत सूझती है। एक छात्र पहले ही से जाकर उस मुर्दे के बगल में खड़ा रहा। जिस छात्र ने रात को मुर्दे की उंगली काट लाने की प्रतिज्ञा की थी वह उस अंधेरे कमरे में पहुंच गया और मुर्दे की उंगली काटकर ज्यों ही चलने लगा कि बगल के छात्र ने उसका हाथ पकड़ लिया। इसने समझा कि मुर्दे ने ही हाथ पकड़ लिया है, इसे सोचते ही वह गिर पड़ा और उसी समय बेहोश हो गया। बाहर लाया गया–होश में लाने के लिए सैकड़ों उपाय हुए पर वह होश में न आया और अन्त में मर गया। ❁❁❁

कर्मफल सिद्धान्त

लेखकः महेन्द्रपाल आर्य, केशवपुरी मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)

यह सृष्टि दो नियमों के अधीन है। ये दोनों नियम सृष्टि में सर्वत्र व्याप्त है। ये दो नियम ये हैं।

1. कारण-कार्य सिद्धान्त।
2. कर्म-फल सिद्धान्त।

ये दोनों सिद्धान्त मूल रूप से एक ही हैं। दोनों में समानता अधिक तथा असमानता न्यून है। प्रथम सिद्धान्त जड़ जगत तथा दूसरा सिद्धान्त चेतन जगत के लिये है। ये ईश्वरीय नियम हैं अटल है, अपरिवर्तनशील है।

कर्म करना जीव का स्वभाव है। जीव शुभ या अशुभ जैसे भी कर्म करता है। ईश्वरीय न्याय व्यवस्थानुसार शुभ या अशुभ फल प्राप्त करता है जो सुख-दु:ख रूप में प्राप्त होता है। योगदर्शन (साधन पाद सूत्र 13) "**सतिमूले तद विपाको जात्यार्युभोगा**" अर्थात् कर्म का मूल रहने पर जब पकता है तो जाति (जन्म शरीर) आयु और भोग, पाप और पुण्य की अपेक्षा से दु:ख और सुखरुपी फल प्राप्त करता है। यही कर्मफल सिद्धान्त कहलाता है।

जीव स्वतन्त्रता से कर्म करता है तथा ईश्वर की न्याय व्यवस्थानुसार फल जो सुख-दु:ख होता है प्राप्त करता है। महर्षि चरक कहते हैं-

कर्मणा चोदितो ये न तदन्यो प्रोति पुर्निभवे।
अभ्यस्त पूर्व देही ये तानेव भजते गुणान्।।
यत्र यत्रै व वसति न यत्र स्वभिच्छिति।
यत्र यत्रैव संयुक्तो धात्रा गर्भे पुनः पुनः।। -(चरक संहिता)

विधाता ईश्वर जीव को जिस-जिस गर्भ में रहने के लिए जब-जब उसको प्रेरित करता है तब-तब उस-उस गर्भ में वास करता है। वह अपनी इच्छानुसार जहां-तहां नहीं जा सकता। अर्थात् वह अपने शुभाशुभ कर्मों का फल भोगने के लिये परमात्मा की आज्ञानुसार शरीर धारण के लिए गर्भ में प्रवेश करता है।

यही बात महाभारत में इस प्रकार कही गयी है-

ना भुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटी शतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृत कर्मः शुभाशुभ।।

अर्थात् शुभाशुभ कर्म मनुष्य करता है उसका वैसा ही शुभ या अशुभ फल (सुख दु:ख) भोगना ही पड़ता है चाहे करोड़ों वर्ष ही क्यों न बीत जायें।

कर्मफल सिद्धान्तों के सम्बन्ध में जन समाज में बड़ी भ्रांतियां व्याप्त हैं। दर्शन शास्त्रों का इस विषय में क्या मत है इसका वर्णन किया जाता है।

1. **पूर्वकृता फलानु बंधात्तदुत्पत्ति** –(न्यायदर्शन 3/2/62)

पूर्व जन्म कृत कर्मजन्य अदृष्ट के सम्बन्ध से शरीर की उत्पत्ति होती है। धर्माधर्म लक्षण भूत सहित उस पूर्व संस्कार से इस शरीर के नाश होने पर कर्मों के सापेक्ष शरीर प्राप्त होता है।

2. **फल कामो निमित्तमिति चेत्। न नित्य त्वात।** –(मीमां. द. 6-2 (9-10)

प्रश्न किया क्या अन्य के लिये शुभ या अशुभ फल की कामना कर लेना ही अन्य के लिये हित या अहित का निमित्त हो सकता है? उत्तर दिया नहीं हो सकता। क्योंकि कर्म के सम्बन्ध में ईश्वर का नियम अटल है।

3. **अन्यस्या पीति चेत। अन्यार्थे नाभि संबंधः।** –(मीमां. 6-2 (7-8)

एक व्यक्ति के किये कर्म का फल दूसरे को प्राप्त हो जाता है यदि ऐसा मान लिया जाये तो क्या दोष होगा? उत्तर दिया एक के कर्म का फल अन्य को मिल जाये या दिया जाये तो अन्याय होगा। इसलिये एक के कर्म का फल अन्य को नहीं मिलता। फल ईश्वर की न्याय व्यवस्था के अधीन है और ईश्वर अन्याय नहीं करता।

4. **कर्म तथेति च। न समवायात।** –(मीमां. द. 6-2 (11-12)

एक के किये कर्मों का फल यदि दूसरे को मिल जायें ऐसा मान लिया जाये तो क्या हानि है? उत्तर दिया ऐसा मानना न्यायोचित नहीं होगा। क्योंकि जीव का अपने कर्मों के साथ ही सम्बन्ध होता है। फल का सम्बन्ध कर्म से, कर्म का सम्बन्ध कर्त्ता से होता है।

5. **आत्मान्तर गुणा ना मात्मान्तरेऽकारणत्वात्।** –(वैशे. दर्शन 6-15)

एक आत्मा के कर्म का फल दूसरी आत्मा को मिले तो यह न्याय कर्मव्यवस्था के विरूद्ध होगा तथा अति प्रसंग दोष आयेगा। इसका अर्थ यह होगा एक जीव के निष्काम कर्मरूपी मोक्ष फल से दूसरा पाप कर्म का फल पाकर निर्दोष जीव बंधन को प्राप्त हो जायेगा। एक जीव के कर्म का फल अन्य जीव को मिले ऐसा मानने पर "**कृत हान्य तथा अकृताभ्यागम**" अर्थात् कृत कर्म की हानि तथा अकृत कर्म का लाभ" यह दोष ईश्वर पर आयेगा।

6. **नियमो वा तन्निमित्त त्वा त्कर्तुस्तत्कारणं स्यात।** –(मी. द. 6-2-15)

इस बात की व्यवस्था है कि जीव कर्त्तव्य कर्मों को अपनी स्वतन्त्रता से करता है क्योंकि क्रियमाण कर्म प्रारब्ध कर्मों के भोग में निमित्त मात्र है और कर्ता के भोग के वे कर्म कारण हैं। प्रारब्ध कर्मों का भोग क्रियमाण कर्मों में बाधक नहीं होता है।

7. **प्रत्यर्थ श्रुतिभाव इति चेत। तादर्शेय न गुणार्थ ताऽनुकतेऽर्थान्त। रत्वात्कर्तुः प्रधान भूत त्वात।**

–(मी. द. 6-2 (5-4)

वेद में मनुष्य को प्रत्येक शुभाशुभ कर्म में स्वतन्त्र कहा है। परन्तु लोक में वह परतन्त्र दिखायी पड़ता है। अतः जीव को कर्म में परतन्त्र मानने में क्या आपत्ति है। मनुष्य यदि कर्म करने में पराधीन माना जायेगा तो फल का कर्त्ता भी किसी अन्य को मानना पड़ेगा। अतः कर्म करने में मनुष्य स्वतन्त्र तथा फल भोगने में पराधीन अर्थात् ईश्वराधीन मानना उचित होगा।

8. **प्रक्रमातु नियम्मे तारम्भस्य क्रिया निमित्तत्वात्।** -(मीमां. द. 6-2-13)

प्रारब्धरुप कर्म अपने भोगरुप फल को उत्पन्न करके यह नियम कर देते हैं कि अन्य का भोग न हो। जो वर्तमानकाल के कर्म हैं उनके आरम्भ में जीव का कर्त्तव्यरुप कर्म निमित्त है। मनुष्य के प्रारब्ध कर्म परतंत्र इसलिये नहीं बनाते क्योंकि वे भोग देने के हेतु होते हैं। क्रियमाण कर्मों के न तो हेतु होते हैं और न कर्म करने में बाधक बनते हैं। यदि प्रारब्ध कर्म ही शुभाशुभ क्रियमाण कर्मों के हेतु हों तो उत्तम प्रारब्ध वाले सदा ही उत्तम बने रहेंगे तथा निकृष्ट प्रारब्ध वाले सदा बुरे ही बने रहेंगे। किन्तु ऐसी मान्यता लोक एवं शास्त्र दोनों के विरूद्ध है। क्योंकि लोक में ऐसा देखा जाता है कि उत्तम निकृष्ट तथा निकृष्ट उत्तम हो जाते हैं।

इन शास्त्रीय प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि-

1. श्राद्ध कर्म, वरदान, आशीर्वाद, श्राप आदि का फल मिलना यह एक मिथ्या कल्पना है।
2. जीव को अपने कर्मों का ही फल मिलता है।
3. शुभ कर्मों का शुभ फल तथा अशुभ कर्मों का अशुभ फल जो सुख या दुख रूप में होता है मिलता है।
4. कर्मफल सिद्धान्त का ज्ञान होने से दुःख नष्ट या दूर नहीं होते लेकिन उनकी तीव्रता कम हो जाती है। सहनशक्ति में वृद्धि अवश्य हो जाती है।
5. जीव कर्म करने में स्वतन्त्र रहता है। स्वतंत्रता का अर्थ है कर्तुम, न कर्तुम या अन्यथा कर्तुम अर्थात् करना न करना या उल्टा करना।
6. कर्म से अभिप्राय है कर्म वह क्रिया है जिससे शरीर में बैठकर आत्मा मन से, मन वचन से, या मन वचन कर्म से किसी भी प्राणी के हित या अहित का कार्य करे। यदि किसी कार्य से किसी दूसरे का हित या अहित नहीं होता या दूसरे को दुःख सुख नहीं पहुंचता तो वह 'कर्म' नहीं कहा जायेगा। कर्म वही क्रिया है जिससे दूसरे को हानि-लाभ, दुःख-सुख पहुंचता है। ❀❀❀

पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से निवेदन है जिन्होंने वर्ष 2016 का शुल्क अभी तक जमा नहीं कराया है वे वर्ष 2017 के वार्षिक शुल्क के साथ शीघ्र ही **'सत्य प्रकाशन'** कार्यालय को जमा करायें ताकि पत्रिका व विशेषांक सुचारू रूप से आपको प्राप्त होते रहें। गत वर्ष का विशेषांक **''भारत और मूर्तिपूजा''** पाठकों को भेज दिया है। इस वर्ष का विशेषांक भी शीघ्र ही भेजा जायेगा। **आप यथाशीघ्र बकाया शुल्क भिजवायें।**

-व्यवस्थापक तपोभूमि मासिक

और मूर्ख में विवेक रखते और विद्वानों का सत्कार तथा मूर्खों की उपेक्षा करते तो ब्राह्मण इस दुर्गति को प्राप्त होकर वैदिक धर्म के नाश का कारण न होते। प्रथम जिस देश में आत्मिक जीवन का आधार विद्या ही बिकने लगे और निर्धन मनुष्य द्रव्य न होने के कारण विद्या से वंचित रहे, वह देश क्यों न महामारी, दुर्भिक्ष और मुकद्दमेबाजी इत्यादि बुराइयों का केन्द्र हो जाए जिस वेद विद्या को आज तक भारत के ऋषि मुनि सदैव बांटते ही चले आये। जो मनुष्यों के भीतर ईश्वर विश्वास के उत्पन्न करने वाली विद्या है। यदि वही बिकने लग जाए तो विद्या के अपमान और निर्धनों के विद्या से वंचित रहने से उस देश का नाश होना अवश्यम्भावी है। मनुष्य विद्या क्यों बेचते हैं? केवल इस कारण से कि जनता इस विवेक से रहित है कि कौन सी संस्था दान की अधिकारी है। अर्थात् वह जो निर्धनों को बिना शुल्क शिक्षा देते हैं या जो शिक्षा को बेचते हैं? लोगों का यह आक्षेप कि निशुल्क शिक्षा देनेवाली संस्थाओं के पास धन न होने से उनकी स्थिति थोड़े ही दिनों की होती है और यही मनुष्यों के अविवेक को प्रकट करता है। क्योंकि प्रत्येक वस्तु की स्थिति परमात्मा के अटल नियम पर आश्रित है। हम दस करोड़ रुपया संग्रह कर लें और वह रुपया बैंकों में एकत्र किया जाए परन्तु परमात्मा को हमारे कर्मों के अनुसार उसकी स्थिति स्वीकृत न हो तो बैंकों का दिवाला निकल जाए और वह संस्था समाप्त हो जाए। हम बहुत उच्चकोटि के भवन बना लें परन्तु भूकम्प के एक झटके में वह स[illegible] नष्ट हो जाए जिनको आजकल तीर्थ कहा जाता है। किसी समय में ये सब उच्च शिक्षा के स्थान थे, जिनके पास करोड़ों की सम्पत्ति थी। महमूद गजनवी ने जब कोट कांगड़ा को लूटा तो सैकड़ों सोने-चांदी के पात्रों को भरकर ले गया।उस समय न तो रुपये ने रक्षा की और न किसी दूसरे पदार्थ ने। दूसरी बात यह है कि निःशुल्क शिक्षा वाले स्थानों में वस्तुओं की जो न्यूनता है, जिससे वे सर्वसाधारण को निर्बल दिखाई देती है जिसके कारण जनता उनकी सहायता कम करती है वह भी तो जनता के अविवेक का फल है। यदि जनता बुद्धि से काम लेती और निशुल्क शिक्षा देने वाली संस्थाओं को इस कारण से कि वे शिक्षा जैसे आत्मिक भोजन को बेचते नहीं किन्तु निःशुल्क बांटते हैं। शिक्षा देने वाली संस्थाएँ दृढ़ हो जातीं जिससे सर्वसाधारण का झुकाव भी उसी ओर हो जाता और सर्वसाधारण के झुकाव से उनके पास आवश्यक सामग्री भी अवश्य पहुंच जाती। जिससे प्रत्येक मनुष्य का उत्साह हो सकता कि वह देश में निशुल्क शिक्षा फैलाने का पुरुषार्थ करे जिससे देश को आत्मिक भोजन प्राप्त होकर आत्मिक जीवन सुदृढ़ हो जिससे प्रत्येक प्रकार की उन्नति दिखाई देने लगे। क्या वह शोकजनक दृश्य नहीं कि वैदिक धर्मानुयायी भी, जिनके पूर्वज सदा से निःशुल्क शिक्षा देते रहे, निःशुल्क शिक्षा देने के विरुद्ध काम कर रहे हैं। क्या कोई सिद्ध कर सकता है कि किसी समय में भी भारतवर्ष के ऋषियों ने शिक्षा का द्वार निर्धनों के लिए बन्द किया हो? जहां तक पता लगाओगे ऐसा एक भी उदाहरण न मिलेगा। यदि उस समय में शिक्षा बेचने वाले अच्छी दृष्टि से देखे जाते तो महात्मा मनु शुल्क देकर पढ़ने वालों और वेतन लेकर पढ़ाने वालों को क्या बुरा बतलाते। जबसे भारतवर्ष में मुसलमानों का राज्य आया तबसे तप का अभ्यास न होने से वेद पढ़कर जो काम करना चाहिए उसके लिए योग्य नहीं होते। बस, जिस देश का दुर्भाग्य आता है उसमें अनाज का अकाल पड़ता है जिससे प्रायः मनुष्यों को दुःख होता है परन्तु अनाज के बिना मनुष्य कई दिन तक जी सकता है परन्तु जिस देश का उससे भी बढ़कर दुर्भाग्य आता है। उस देश में पानी का अकाल पड़ जाता है। जिससे अनाज के दुर्भिक्ष से भी अधिक कष्ट होता है। क्योंकि पानी के बिना एक दिन जीना भी कठिन हो जाता है। जिस देश का अत्यधिक दुर्भाग्य होता है, वहां के निवासियों को वायु से वंचित किया जाता है। जिससे दो मिनट का जीवन भी असम्भव हो जाता है परन्तु इससे केवल शरीर को ही हानि पहुंचती है। आत्मा को कोई हानि नहीं होती। जिस देश का सर्वाधिक दुर्भाग्य होता है उस देश में विद्या का दुर्भिक्ष होता है। उस देश के दुर्भाग्य के विषय में क्या कहा जाए क्योंकि इससे मनुष्य जीवन जिसके पांच मिनट के बराबर भी चक्रवर्ती राज्य नहीं हो सकता, निष्फल जाता है। ❁❁❁

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (सजिल्द)	220.00	मील का पत्थर	20.00
शुद्ध रामायण (अजिल्द)	170.00	भ्रांति दर्शन	20.00
शंकर सर्वस्व	120.00	दयानन्द और विवेकानन्द	15.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00
नारी सर्वस्व (प्रेस में)		बाल मनुस्मृति	12.00
शुद्ध कृष्णायण	50.00	ओंकार उपासना	12.00
शुद्ध हनुमच्चरित	60.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
विदुर नीति	40.00	दादी पोती की बातें	10.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	क्या भूत होते हैं	10.00
चाणक्य नीति	40.00	आर्यों की दिनचर्या	10.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	महाभारत के कृष्ण	8.00
नित्य कर्म विधि	32.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
वेद प्रभा	30.00	सच्चे गुच्छे	8.00
शान्ति कथा	30.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
भारत और मूर्ति पूजा	30.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
यज्ञमय जीवन	30.00	गायत्री गौरव	5.00
दो बहिनों की बातें	30.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
दो मित्रों की बातें	30.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00	सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
चार मित्रों की बातें	20.00	मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	20.00	जीजा साले की बातें	5.00

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2017 के लिये वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

....

....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबाइल- 9759804182

Yogendra # 9927136600

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित